

एसो पंच णमोक्कारो

णमो

यह सारा जगत् तरंगों से आन्दोलित है। विचारों की तरंगें, कर्म की तरंगें, भाषा और शब्द की तरंगें पूरे आकाश में व्याप्त हैं। व्यक्ति का मस्तिष्क और स्नायविक प्रणाली भी आन्दोलित हो रही है। इस स्थिति में मन्त्र क्या है और उसके द्वारा क्या किया जा सकता है। यह भी सोचने का अवसर मिलता है। मन्त्र एक प्रतिरोधात्मक शक्ति है। मन्त्र एक कवच है। मन्त्र एक प्रकार की चिकित्सा है। संसार में होने वाले प्रकंपनों से बचने के लिए, उनके प्रभावों को कम करने के लिए, व्यक्ति प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करे; मन्त्र की भाषा में—कवचीकरण का विकास करे।

प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर एक आभामंडल होता है, एक वलय होता है। अच्छे विचारों से अच्छा आभामंडल, बुरे विचारों से बुरा आभामंडल बनता है। मन्त्रशक्ति के उपयोग से, शब्दों की संयोजना से ऊर्जा का आभामंडल बनाया जा सकता है। हम उस शब्द-विन्यास का उच्चारण करें। सूक्ष्म या सूक्ष्मातिसूक्ष्म उच्चारण करें। इससे निर्मित होने वाला ऊर्जा का आभावलय इतना शक्तिशाली और इतना प्रतिरोधात्मक बनेगा कि कोई भी बाहरी शक्ति आक्रमण नहीं कर पाएगी।

मन्त्र की आराधना की अनेक निष्पत्तियां हैं—वे निष्पत्तियां आंतरिक, बाह्य, मानसिक, शारीरिक हैं। इस प्रकार इसकी निष्पत्तियों के रूप में मन की प्रसन्नता, चित्त की संतुष्टि, संकल्प-शक्ति के विकास आदि को सहज रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

एसो पंच णमोक्कारो

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

एसो पंच णमोक्कारो

आचार्य महाप्रज्ञ

© आदर्श साहित्य संघ चूरू (राजस्थान)

संपादक
मुनि दुलहराज

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक : आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान)
मूल्य : पचास रुपये / संस्करण २००० / मुद्रक : पवन प्रिंटेर्स, दिल्ली-३२

ESO PANCH NAMOKKARO by Acharya Mahaprajna

Rs. 50.00

प्रस्तुति

नमस्कार महामंत्र का मूलस्रोत और कर्ता

नमस्कार महामंत्र आदि-मंगल के रूप में अनेक आगमों और ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। अभयदेव सूरी ने भगवती सूत्र की वृत्ति के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र की व्याख्या की है। प्रज्ञापना के आदर्शों में प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र लिखा हुआ मिलता है, किन्तु मलयगिरि ने प्रज्ञापनावृत्ति में उसकी व्याख्या नहीं की। षट्खण्ड के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र मंगल-सूत्र के रूप में उपलब्ध है। इन सब उपलब्धियों से उसके मूल स्रोत का पता नहीं चलता। महानिशीथ में लिखा है कि पंचमंगल महाश्रुतस्कंध का व्याख्यान सूत्र की निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियों में किया गया था और वह व्याख्यान तीर्थकरों के द्वारा प्राप्त हुआ था। कालदोष से वे निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियां विच्छिन्न हो गईं। फिर कुछ समय बाद वज्रस्वामी ने नमस्कार महामंत्र का उद्धार कर उसे मूल सूत्र में स्थापित किया। यह बात वृद्ध सम्प्रदाय के आधार पर लिखी गई है। इससे भी नमस्कार मंत्र के मूलस्रोत पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

आवश्यक निर्युक्ति में वज्रसूरी के प्रकरण में उक्त घटना का उल्लेख भी नहीं है। वज्रसूरी दस पूर्वधर हुए हैं, उनका अस्तित्वकाल ई० पू० पहली शताब्दी है। शयंभवसूरी चतुर्दश पूर्वधर हुए हैं और उनका अस्तित्वकाल ई० पू० ५-६ शताब्दी है। उन्होंने कायोत्सर्ग को नमस्कार के द्वारा पूर्ण करने का निर्देश दिया है। दशवैकालिक सूत्र की दोनों चूर्णियों और हारिभद्रीय वृत्ति में नमस्कार की व्याख्या 'णमो अरहंताणं' मंत्र के रूप में की है।

आचार्य वीरसेन ने षट्खंडागम के प्रारम्भ में दिए गए नमस्कार महामंत्र को निबद्ध मंगल बतलाया है। इसका फलित यह होता है कि नमस्कार महामंत्र के कर्ता आचार्य पुष्पदन्त हैं। आचार्य वीरसेन ने यह किस आधार पर लिखा, इसका कोई अन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। जैसे भगवती-सूत्र की प्रतियों के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र लिखा हुआ था और अभयदेवसूरी ने उसे सूत्र का अंग मानकर उसकी व्याख्या की, वैसे ही आचार्य पुष्पदन्त को उसका कर्ता बतला दिया। आचार्य पुष्पदन्त का अस्तित्व-काल वीर-निर्वाण की सातवीं शताब्दी (ई० की पहली शताब्दी) है। खार्वेल का शिलालेख ई० पू० १५२ का है। उसमें 'नमो अरहंताणं', 'नमो सव्व सिद्धाणं'—ये पद मिलते

हैं। इसमें नमस्कार महामंत्र का अस्तित्वकाल आचार्य पुष्पदन्त से बहुत पहले चला जाता है। शयंभवसूरी का दशवैकालिक में प्राप्त निर्देश भी इसी ओर संकेत करता है। भगवान् महावीर दीक्षित हुए तब उन्होंने सिद्धों को नमस्कार किया था। उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन के प्रारम्भ में 'सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ'—सिद्ध और साधुओं को नमस्कार किया गया है। इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि नमस्कार की परिपाटी बहुत पुरानी है और उसका रूप भी बहुत पुराना है, किन्तु भगवान् महावीर के काल में पंचमंगलात्मक मंत्र प्रचलित था या नहीं, इस प्रश्न का निश्चयात्मक उत्तर देना सरल नहीं है। महानिशीथ के उक्त प्रसंग के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान स्वरूप वाला नमस्कार महामंत्र भगवान् महावीर के समय में प्रचलित था। किन्तु उसकी पुष्टि के लिए कोई दूसरा प्रमाण अपेक्षित है। आवश्यक निर्युक्ति में एक महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। निर्युक्तिकार ने लिखा है—पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार कर सामायिक करना चाहिए, यह पंच नमस्कार सामायिक का ही एक अंग है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नमस्कार महामंत्र उतना ही पुराना है, जितना सामायिक सूत्र। सामायिक आवश्यक का प्रथम अध्ययन है। नंदी में आई हुई आगम की सूची में उसका उल्लेख है। नमस्कार महामंत्र का वहां एक श्रुतस्कन्ध या महाश्रुतस्कन्ध के रूप में कोई उल्लेख नहीं है। इससे भी अनुमान किया जा सकता है कि यह सामायिक अध्ययन का एक अंगभूत रहा है। सामायिक के प्रारम्भ में और उसके अंत में पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया जाता था। कायोत्सर्ग के प्रारम्भ और अन्त में भी पंच नमस्कार की पद्धति प्रचलित थी। आचार्य भद्रबाहु के अनुसार नंदी और अनुयोगद्वार को जान कर तथा पंच मंगल को नमस्कार कर सूत्र का प्रारम्भ किया जाता है। संभव है इसीलिए अनेक आगम-सूत्रों के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र लिखने की पद्धति प्रचलित हुई। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने उसी आधार पर नमस्कार महामंत्र को सर्वश्रुतान्तर्गत बतलाया। उनके अनुसार पंच नमस्कार करने पर ही आचार्य सामायिक आदि आवश्यक और क्रमशः शेष श्रुत शिष्यों को पढ़ाते थे। प्रारम्भ में नमस्कार मंत्र का पाठ और उसके बाद आवश्यक का पाठ किया जाता था। इस दृष्टि से उसे सर्व-श्रुताभ्यन्तरवर्ती कहा गया। फिर भी नमस्कार मंत्र को जैसे सामायिक का अंग बतलाया है, वैसे किसी अन्य आगम का अंग नहीं बताया गया है। इस दृष्टि से नमस्कार महामंत्र का मूलस्रोत सामायिक अध्ययन ही सिद्ध होता है। आवश्यक या सामायिक अध्ययन के कर्त्ता यदि गौतम गणधर को माना जाए तो पंच मंगलरूप नमस्कार महामंत्र के कर्त्ता भी गौतम गणधर ही ठहरते हैं।

नमस्कार महामंत्र के पदों का क्रम

नमस्कार महामंत्र के पदों का क्रम भी चर्चित रहा है। क्रम दो प्रकार का होता है—पूर्वानपूर्वी और पश्चानुपूर्वी। पूर्वपक्ष का कहना है कि नमस्कार महामंत्र में ये दोनों प्रकार के क्रम नहीं हैं। यदि पूर्वानुक्रम हो तो 'णमो सिद्धाणं' णमो अरहंताणं' ऐसा होना चाहिए। यदि पश्चानुपूर्वी क्रम हो तो 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—यहां से प्रारम्भ होना चाहिए और उसके अन्त में 'णमो सिद्धाणं' होना चाहिए। उत्तरपक्ष का प्रतिपादन यह रहा है कि नमस्कार महामंत्र का क्रम पूर्वानुपूर्वी ही है। इसमें क्रम का व्यत्यय नहीं है। इस क्रम की पुष्टि के लिए निर्युक्तिकार ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि सिद्ध अर्हत् के उपदेश से ही जाने जाते हैं। वे ज्ञापक होने के कारण हमारे अधिक निकट हैं, अधिक पूजनीय हैं, अतः उनको प्रथम स्थान दिया गया। आचार्य मलयगिरि ने एक तर्क और प्रस्तुत किया कि अर्हत् और सिद्ध की कृतकृत्यता में दीर्घकाल का व्यवधान नहीं है। उनकी कृतकृत्यता प्रायः समान ही है। आत्म-विकास में बाधा डालने वाले चार घात्य कर्म ही हैं। उनके क्षीण होने पर आत्म-स्वरूप पूर्ण विकसित हो जाता है, विकास का एक अंश भी न्यून नहीं रहता। केवल भवोपग्राही कर्म शेष रहने के कारण अर्हत् शरीर को धारण किए रहते हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अर्हत् से सिद्ध बड़े हैं। नैश्चयिक दृष्टि से बड़े-छोटे का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह प्रश्न मात्र व्यावहारिक है। व्यवहार के स्तर पर अर्हत् का प्रथम स्थान अधिक उचित है। अर्हत् या तीर्थकर धर्म के आदिकर होते हैं। धर्म का स्रोत उन्हीं से निकलता है। उसी में निष्णात होकर अनेक व्यक्ति सिद्ध बनते हैं। अतः व्यवहार के धरातल पर धर्म के आदिकर या महास्रोत होने के कारण जितना महत्त्व अर्हत् का है, उतना सिद्ध का नहीं। प्रथम पद में अर्हत् शब्द के द्वारा केवल तीर्थकर ही विवक्षित हैं, अन्य केवली या अर्हत् विवक्षित नहीं हैं। यदि नैश्चयिक दृष्टि की बात होती तो सामान्य केवली या सामान्य अर्हत् को पांचवें पद में सब साधुओं की श्रेणी में नहीं रखा जाता। आचार्य और उपाध्याय तीसरे-चौथे पद में हैं और केवली पांचवें पद में। इसका हेतु व्यावहारिक उपयोगिता ही है।

यह प्रश्न किया गया कि आचार्य अर्हत् के भी ज्ञापक होते हैं, इसलिए 'णमो आयरियाणं' यह प्रथम पद होना चाहिए। इसके उत्तर में निर्युक्तिकार ने कहा—आचार्य अर्हत् की परिषद् होते हैं। कोई भी व्यक्ति परिषद् को प्रणाम कर राजा को प्रणाम नहीं करता। अर्हत् और सिद्ध दोनों तुल्य-बल हैं, इसलिए उनमें पौर्वापर्य का विचार किया जा सकता है, किन्तु परमनायक अर्हत् और परिषद् कल्प आचार्य में पौर्वापर्य का विचार नहीं किया जा सकता।

नमस्कार महामंत्र का महत्त्व

प्रस्तुत महामंत्र समग्र जैन शासन के समान रूप से प्रतिष्ठा-प्राप्त है। यही इसकी प्राचीनता का हेतु है। यदि यह श्वेताम्बर और दिगम्बर का अन्तर होने के बाद निर्मित होता, तो संभव है कि समग्र जैन शासन में इसे इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती। किसी एक सम्प्रदाय में इसका महत्त्व होता, दूसरे में इतना महत्त्व नहीं होता। यह मंत्राधिराज के रूप में प्रतिष्ठित नहीं होता। लगभग डेढ़ हजार वर्ष की अवधि में इस महामंत्र पर विपुल साहित्य रचा गया। इसके सहारे अनेक मंत्रों का विकास हुआ और इसकी स्तुति में अनेक काव्य रचे गए। यह जैनत्व का प्रतीक बना हुआ है। जो जैन होता है, वह कम से कम महामंत्र का अवश्य पाठ करता है। वह कैसा जैन, जो महामंत्र को नहीं जानता। जो नमस्कार महामंत्र को धारण करता है, वह श्रावक है। उसे परम बन्धु मानना चाहिए। इस दृष्टि से हम नमस्कार महामंत्र की व्यापकता का मूल्यांकन कर सकते हैं।

नमस्कार महामंत्र, जप और ध्यान

नमस्कार मंत्र पर जप और ध्यान की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। उसके अनेक प्रयोग प्रस्तुत किए गए हैं। संकल्पशक्ति, इच्छाशक्ति और मन की शक्ति को विकसित करने के लिए मंत्र की साधना की जाती है। उसकी साधना के द्वारा जब प्राण-शक्ति जागृत होती है, तब उसके प्रयोग दो दिशाओं में होते हैं। एक दिशा है सिद्धि की और दूसरी है आन्तरिक व्यक्तित्व के परिवर्तन की। तैजसू शरीर (बायो एलेक्ट्रीसिटी) का विकास होने पर सम्मोहन, वशीकरण, वचन-सिद्धि, रोग-निवारण, विचार-संप्रेषण (टेलीपैथी) आदि अनेक सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। मंत्र के जप से ऊर्जा बढ़ती है। इसका उपयोग यदि अन्तर्मुखी होने और कषाय को कम करने के लिए किया जाए तो आन्तरिक व्यक्तित्व बदलने लगता है। नमस्कार महामंत्र में चमत्कार और आत्म-शोधन—दोनों प्रकार के शक्ति-बीज निहित हैं। आत्मशोधन की दृष्टि से इसका जप किया जाता है तब इसके साथ बीजाक्षरों का योग नहीं किया जाता। सिद्धि की दृष्टि से जब इसका जप किया जाता है, तब इसके साथ बीजाक्षरों का योग किया जाता है। बीजाक्षररहित नमस्कार महामंत्र के अनेक मंत्र बनते हैं—

१. पैंतीस अक्षर का मंत्र—समग्र नमस्कार मंत्र।

२. सप्ताक्षरी मंत्र—१. नमो अरहंताणं, २. नमो आयरियाणं, ३. नमो उवज्जायाणं।

३. पंचाक्षरी मंत्र—नमो सिद्धाणं।

४. नवाक्षरी मंत्र—नमो लोए सव्वसाहूणं।

इस महामंत्र का खण्ड रूप में जप किया जाता है जैसे—

१. अरहंताणं, २. सिद्धाणं, ३. आयरियाणं, ४. उवज्जायाणं, ५. साहूणं।

ये सब विभिन्न आन्तरिक शक्तियों को जगृत करने वाले अनुभूत प्रयोग हैं। नमस्कार महामंत्र के मंत्र शास्त्रीय संक्षिप्त रूप भी मिलते हैं। जैसे—

१. अ सि आ उ सा (पंचाक्षरी मंत्र)।

२. अरहंत सिद्ध आयरिअ उवज्जाय साहू (षोडशाक्षरी मंत्र)।

बीजाक्षरों के साथ नमस्कार महामंत्र के सैकड़ों प्रयोग मिलते हैं। अनेक आचार्यों ने इस महामंत्र पर अनेक कल्प-ग्रन्थ और मंत्र शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे हैं। ग्रह-शान्ति और विघ्न-शान्ति, कायोत्सर्ग-पद्धति और वज्रपंजर आदि विभिन्न दिशाओं में इस महामंत्र का प्रयोग किया है। जैन परंपरा में मंत्र-शास्त्र के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किन्तु नमस्कार महामंत्र का जितना व्यापक प्रयोग किया गया, उतना अन्य किसी भी मंत्र का नहीं किया गया। नमस्कार महामंत्र के जैसे जप के प्रयोग मिलते हैं, वैसे ही इसके ध्यान के प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं। 'नवपद ध्यान' जैन परम्परा में बहुत प्रसिद्ध है। चैतन्य केन्द्रों पर भी नमस्कार मंत्र का ध्यान किया जाता है। पुरुषाकार ध्यान करने की पद्धति भी रही है। इस प्रकार नमस्कार महामंत्र के सर्व दिशाव्यापी प्रयोग किए गए। उनकी सफलता के आधार पर ही नमस्कार महामंत्र को 'सर्व पावषणासणो' कहा गया।

इस महामंत्र पर विशाल साहित्य प्रकाश में आया है। फिर भी ध्वनि-विज्ञान के प्रयोग और परीक्षणों के आधार पर इसके मूल्यांकन की आज भी अपेक्षा है। इसकी उच्चारण-विधि और उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि-तरंगों के बारे में हमारी जानकारी अपर्याप्त है। इसलिए इस विषय को अभी मैं अनुसंधान और गवेषणा के अन्तर्गत ही मानता हूँ। मैंने बीकानेर के प्रेक्षाध्यान-शिविर में नमस्कार महामंत्र के प्रयोग कराए और वे प्रयोग काफी सफल रहे। मैं उनको सफल इस दृष्टि से मानता हूँ कि उनकी प्रतिक्रिया तत्काल प्रकट होती थी। ध्यान करने वाले को कभी प्रवल गर्मी का अनुभव करना पड़ता, तो कभी वे सर्दी का अनुभव करने लगते। प्रत्येक पद की चतुष्पाद ध्यान-पद्धति में नए-नए अनुभव हुए और स्वभाव-परिवर्तन के उदाहरण सामने आए। मुझे लगा कि नमस्कार महामंत्र का उपयोग आत्मानुभूति के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक में उसकी चर्चा हुई है। साथ-साथ शक्ति-जागरण की चर्चा भी है। मेरे महान् गुरु ने मुझे अध्यात्म के प्रयोग की दिशा में प्रवृत्त किया। शिविर-काल में पूज्य गुरुदेव स्वयं उपस्थित रहते हैं और भाषा को अपनी टिप्पणी से और अधिक प्राणवान् बना देते हैं। क्षेत्रीय दूरी के कारण यह अवसर नहीं मिल सका, फिर भी पूज्य गुरुदेव की आत्मा की सन्निधि प्रस्तुत पुस्तक में सर्वत्र है।

प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने के श्रमसाध्य कार्य में तथा उसके संपादन में मुनि दुलहराजजी ने उत्साहपूर्ण कार्य किया है। इसके लिए उन्हें साधुवाद देता हूँ।

पाठक वर्ग ने संप्रति प्रकाशित होने वाले ध्यान-संबंधी ग्रन्थों के प्रति जो भावना प्रदर्शित की है, जिस अभिरुचि से उन्हें पढ़ा है और उसके आधार पर प्रयोग का प्रयत्न किया है, उससे उस क्षेत्र में उज्ज्वल संभावनाएं जन्म ले रही हैं। मैं मंगल भावना करता हूँ कि जन-जन में अध्यात्म की भावना जागे। प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व को जाने, पहचाने। मैं फिर एक बार पूज्य गुरुदेव के प्रति श्रद्धा-प्रणत प्रणाम करता हूँ और कामना करता हूँ कि उनके पथ-दर्शन से समूची मानव-जाति का पथ आलोकित वने।

आचार्य महाप्रज्ञ

ग्यारहवां संस्करण

नमस्कार महामंत्र पवित्र आत्माओं की वंदना का अमोघ स्मृति-पीठ है। न कोई व्यक्ति और न कोई संप्रदाय। केवल आत्मा और परमात्मा। केवल साधना और केवल विशुद्धि। शक्तिशाली वर्णों का विन्यास। विधि से किया गया पाठ कभी निष्फल नहीं होता। पुराने संस्कारों की निर्जरा और साथ-साथ प्रासंगिक भावना सिद्धि। सब कुछ होता है पवित्रता के परिपार्श्व में। इस ग्रंथ को सभी जैन-अजैन लोगों ने अपना बनाया है और इसकी साधना को शीर्ष स्थान दिया है। आदर्श साहित्य संघ द्वारा प्रकाशित होने वाला ग्यारहवां संस्करण अनेक नए पाठकों के लिए ध्येय की उपलब्धि का साधन बनेगा।

जैन विश्व भारती

लाडनूं,

२२ अक्टूबर १९९५

आचार्य महाप्रज्ञ

अनुक्रम

१. अनन्त की अनुभूति	१
२. मंत्र क्या है ?	६
३. मंत्र का प्रयोजन	१७
४. मंत्र का साक्षात्कार	२५
५. महामंत्र	३४
६. आध्यात्मिक चिकित्सा [१]	४२
७. आध्यात्मिक चिकित्सा [२]	५३
८. मानसिक स्वास्थ्य और नमस्कार महामंत्र	६४
९. शारीरिक स्वास्थ्य और नमस्कार महामंत्र	७४
१०. महामंत्र : निष्पत्तियां-कसौटियां	८२
११. ओम्	९३
१२. जिज्ञासितम्	१०१
१३. परिशिष्ट	१११

ग्रहों के उपद्रवों की शांति के लिए नमस्कार महामंत्र

- सूर्य और मंगल —ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ।
- चन्द्र और शुक्र —ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं ।
- बुध —ॐ ह्रीं णमो उवज्जायाणं ।
- गुरु —ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं ।
- शनि, राहु और केतु —ॐ ह्रीं णमो लोए सब्ब साहूणं ।

प्रेक्षा-ध्यान-शिविर

मंगलाशुहर

(२५ अगस्त से ३ दिसम्बर)

१. अनन्त की अनुभूति

- हम अनन्त से अपरिचित हैं।
- अनन्त से अपरिचित होने का अर्थ अपने आप से अपरिचित होना है।
- हमारा अस्तित्व अनन्त है, किन्तु हम शरीर की सीमा में बंदी हैं इसलिए अपने-आपको ससीम अनुभव कर रहे हैं।
- शरीर की सीमा के दो प्रहरी हैं— अहंकार और ममकार।
- अहंकार समानता के सूत्र को काट देता है।
- ममकार विजातीय में सजातीय की भावना भर देता है।
- असीम का बोध अनन्त की अनुभूति द्वारा। उसके साधन हैं— संयम, तप, ध्यान, मंत्र और तंत्र।
- मंत्र की अचिन्त्य शक्ति।
- मंत्र प्रतिरोध-शक्ति भी है और चिकित्सा भी है।
- णमो अरहंताणं
णमो—अहं का विसर्जन
अरहंताणं—ममत्व का विसर्जन
- अनन्त की अनुभूति तब तक नहीं जब तक अपूर्णता।
- अपूर्णता के तीन लक्षण— अज्ञान, मूर्च्छा, अंतराय—विघ्न।
- इस सप्ताक्षरी मंत्र से अपूर्णता समाप्त होती है।



हम जिस विश्व में जी रहे हैं, वह समस्याओं का विश्व है। जीवन में

समस्याएं एक के बाद एक आती रहती हैं। प्रश्न होता है कि समस्या का मूल क्या है ? मनुष्य मूल को खोजना पसन्द करता है। एक जिज्ञासु ने पूछा—पाप का मूल क्या है ? उत्तर दिया गया—पाप का मूल है अभिमान। व्यक्ति सदा से मूल को पूछता रहा है। उसने धर्म का मूल पूछा, दया और अहिंसा का मूल पूछा। मूल को जानने की बात सबके मन में होती है। मनुष्य फल और फूल को देखकर ही संतोष नहीं लेता। वह मूल को समझना चाहता है, बीज को समझना चाहता है। इसी प्रकार समस्या का मूल क्या है ? समस्या का पिता कौन है ? ये प्रश्न बहुत बार उभरते हैं। मैं मानता हूं, समस्या का मूल है— अपने आपसे अपरिचित रहना। मनुष्य सबको जानता है, किन्तु अपने आपको नहीं जानता। वह अपने से अपरिचित है इसलिए समस्याएं अनन्त होती चली जाती हैं। उन समस्याओं का कहीं अन्त नहीं आता, कोई समाधान नहीं मिलता। एक समस्या सुलझने लगती है, दूसरी समस्या सामने उपस्थित हो जाती है। दूसरी समस्या सुलझने लगती है, तीसरी समस्या उठ खड़ी होती है। यह समस्या का चक्र निरंतर चलता रहता है। प्रत्येक समाधान एक नई समस्या पैदा कर देता है। इसका मूल कारण है अपने आपसे अपरिचित होना। अपरिचय की स्थिति में हम अपने को समझ नहीं पाते। हम अपनी संपदा, वैभव और शक्ति को नहीं जान पाते।

मनुष्य चेतनावान् है। वह अनन्त ज्ञान का धनी है, फिर भी वह अपने को अज्ञानी मानता है। वह शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी अपने को शक्तिहीन मानता है। वह वीतराग और परम आत्मा होते हुए भी अपने को कषाययुक्त और अपरम मानता है। यह इसलिए है कि वह अपने से अपरिचित है। जब तक यह अपरिचय बना रहेगा तब तक वह दरिद्र, हीन और दीन मानता ही रहेगा।

एक धनी व्यक्ति था। वह मर गया। लड़के ने सोचा, अब वह दरिद्र हो गया है। वह भिखारी बन गया। वह भीख मांगने लगा। एक दिन पुराना मित्र मिल गया। भिखारी के वेश में अपने मित्र को देखकर अवाक् रह गया। उसने पूछा—‘यह क्या ? तुम इतने बड़े धनी के पुत्र, भिखारी कैसे ?’ उसने कहा— ‘सारी सम्पदा नष्ट हो गई। सब कुछ चला गया। अब मेरे लिए भीख मांगना ही बचा है।’ मित्र बोला—‘यह कभी नहीं हो

सकता। अब भी तुम उतने ही धनी हो, जितने पहले थे। तुम्हारे गले में यह क्या बंधा है ?' उसने कहा—'मेरे पिता ने मेरे गले में एक ताबीज बांधा था। जिससे कि मैं उन सारी बुरी हवाओं से बच जाऊँ। मेरे पर बुरी छाया न पड़े, इसलिए यह ताबीज बंधा है ?' मित्र ने कहा— यह ताबीज ही रहस्य का खजाना है। इसे तोड़ो सब कुछ समझ में आ जाएगा।' ताबीज को तोड़ा। पहली पीतल की खोल उतर गई। फिर चांदी की खोल उतरी और फिर सोने की खोल उतरी। तीनों आवरण हट गए। अन्दर था एक बड़ा-सा हीरा, जो चमक रहा था। मित्र ने कहा— 'अब बोलो, जिसके पास यह हीरा हो वह भिखारी कैसे हो सकता है ? तुम लाखों रुपयों की संपदा अपने गले में बांधे फिरते हो, फिर दरिद्र कैसे ? तुम धनी हो।'

बहुत बार ऐसा होता है, व्यक्ति को अपनी अटूट संपदा का पता नहीं रहता। मनुष्य अपने से बहुत अनजान है इसलिए अपने को अज्ञानी, अशक्त और मूर्च्छा में आसक्त समझता है। वह असीम है, अनन्त है, फिर भी अपने को ससीम अनुभव कर रहा है। उसे अनन्तता की विस्मृति हो गई है। इस विस्मृति ने उसे सीमा में डाल दिया। आदमी ससीम नहीं है। वह असीम है, अनन्त है। किन्तु वह ससीम मान बैठता है। उसकी सीमा के दो प्रहरी हैं। एक है—अहंकार और दूसरा है—ममकार। ये दोनों प्रहरी शरीर के भीतर बैठे हुए अनन्त चैतन्य को बाहर नहीं आने देते। मनुष्य को मूल परिचय से वंचित रखने वाले इन दोनों प्रहरियों ने मनुष्य को सीमा में बांध रखा है। शरीर एक सीमा है। जब अहंकार की चेतना जागती है तब व्यक्ति सबसे टूट जाता है। समानता का सूत्र अस्त-व्यस्त हो जाता है। एक आदमी दूसरे आदमी के समान है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। कोई किसी से हीन नहीं है। कोई किसी से अतिरिक्त नहीं है। किन्तु अहंकार की चेतना ने व्यक्ति को ऐसा बांधा कि वह अनेक उपाधियों के साथ अपने आपको अनुभव करने लगा। कोई भी व्यक्ति इस दुनिया में ऐसा नहीं है, जो अपने को निरुपाधिक कह सके। (सबके पीछे अहंकार की उपाधियां जुड़ी हुई हैं। मैं व्यापारी हूँ। मैं कर्मचारी हूँ। मैं प्रेजुएट हूँ। मैं बुद्धिवादी हूँ। मैं अमुक हूँ, मैं अमुक हूँ—इस प्रकार सब अहंकार के सूत्र से बंटे हुए हैं। 'मैं विद्वान् हूँ'—इसका अर्थ यह हुआ कि मैं अन्य लोगों से अलग हो गया और समानता का सूत्र टूट गया। दो श्रेणियां बन गईं। एक विद्वानों की श्रेणी

और दूसरी अविद्वानों की श्रेणी। एक स्वामी की श्रेणी और दूसरी सेवक की श्रेणी। अहंकार ने व्यक्ति को इतना बांट दिया, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच इतनी सीमा-रेखाएं खींच दीं कि व्यक्ति मूलभूत समानता को विस्मृत कर अलग-अलग खेमों में बंट गए।

हमारे शरीर का दूसरा प्रहरी है —ममकार। ससीम मनुष्य का ममकार असीम हो गया है। मनुष्य पदार्थ के प्रति इतना मूर्च्छित है कि वह जो अपना नहीं है, उसे भी अपना मान बैठा है। 'यह मेरा है' इस चिन्तन ने सारी समस्याओं को जन्म दे डाला। मेरेपन की भावना शरीर तक ही सीमित नहीं है, वह असीम हो गई है। जो संपदा, जो पदार्थ आत्मा से संबंधित नहीं है, जो सर्वथा विजातीय है, उसे भी मनुष्य ने अपना मान लिया। उसे अपना मानकर मनुष्य ने उस पर ममकार का आवरण डाल दिया। ममत्व से उसे बांध लिया। इस ममत्व के कारण समानता की अनुभूति टूट गई।

इन तत्त्वों ने मनुष्य को सीमित कर दिया। उसकी अनन्त की अनुभूति समाप्त हो गई। वह अपने को ससीम अनुभव करने लगा। जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जब चेतना का नया उन्मेष होता है और मनुष्य को यह अनुभव होता है कि वह सान्त नहीं, अनन्त है, ससीम नहीं, असीम है। इस अनुभूति के क्षण में अनन्त की दिशा में उसकी यात्रा शुरू होती है और वह अनन्त और असीम के यात्रापथ का पथिक बन जाता है। उस यात्रापथ में उसके सहायक चार तत्त्व होते हैं—संयम, तप, मंत्र और तंत्र। केवल संयम से काम चल सकता है, किन्तु कोरे संयम की बात समझ में नहीं आती तब तप को साथ जोड़ दिया। संयम करो और तपाओ। अपने स्थूल शरीर को तपाओ। स्थूल शरीर के भीतर जो सूक्ष्म शरीर है, जो कर्म-शरीर है, जो संस्कारों का शरीर है, उसे तपाओ। जब तप की बात भी पूरी समझ में नहीं आई तब उसके साथ मंत्र और तंत्र जोड़े गए। कहा गया—मंत्र की उपासना करो, तंत्र की उपासना करो।

केवल संयम से भी काम चल सकता था, केवल तप से भी काम चल सकता था किन्तु मनुष्य विस्तार चाहता है। ऐसी स्थिति में वह एक ही पदार्थ को अनेक भागों में विभक्त कर देता है। मंत्र की साधना तंत्र की साधना से भिन्न नहीं है। मंत्र स्वयं तप है। मंत्र-जप स्वाध्याय का एक प्रकार है। वह ध्यान है। मंत्र को स्वाध्याय और ध्यान से पृथक् नहीं माना

जा सकता। मंत्र से आगे फिर तंत्र की बात आई।

एक प्रसिद्ध वाक्य है—‘अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः’—मणि, मंत्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। उनके प्रभाव के बारे में कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती। सामान्यतः आदमी मानता है कि रत्न है तो सब कुछ है। वह धन है, वह अर्थ है। उसमें विनिमय की क्षमता है। उससे पदार्थ खरीदे जा सकते हैं। रत्न का इतना प्रभाव नहीं है। इतना ही प्रभाव होता हो यह बात नहीं कही जाती—‘अचिन्त्यो मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः।’ अचिन्त्य प्रभाव कहने की आवश्यकता नहीं होती। उसमें अचिन्त्य प्रभाव है। हम इसको समझें।

हमारा विश्व संक्रमण का विश्व है। इसमें चारों ओर से विकिरण होता है। प्रत्येक पदार्थ अपनी रश्मियां छोड़ता है। ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है, जिससे रश्मियां विकिरण नहीं होती हों। सारे पदार्थ विकिरण कर रहे हैं। प्रत्येक पदार्थ में से अनन्त-अनन्त परमाणु निकल रहे हैं। प्रत्येक पदार्थ में अनन्त-अनन्त परमाणु जा रहे हैं। परमाणुओं के संक्रमण को नहीं रोका जा सकता। एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में परमाणु संक्रमित हो रहे हैं। ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है, जो अपने आपको इस संक्रमण से बचा सके। हम पृथ्वी पर जीते हैं, किन्तु पृथ्वी के पदार्थ ही हमें संक्रान्त नहीं करते। इस असीम आकाश में विचरण करने वाले असंख्य ग्रहों के परमाणु भी हमें संक्रान्त करते हैं। उन ग्रहों के विकिरण हमको प्रभावित करते हैं।

भगवान् महावीर ने विश्व-स्थिति के दस सूत्र बतलाए। उनमें एक सूत्र का प्रतिपाद्य है— प्रत्येक पदार्थ दूसरे पदार्थ से प्रभावित होता है। अप्रभाव क्षेत्र जैसा कुछ भी नहीं है। व्यक्ति जिन ग्रहों में जन्म लेता है, उन ग्रहों के विकिरण व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। जैसे-जैसे संक्रमण होता है, व्यक्ति अच्छा या बुरा बन जाता है। ज्योतिषियों ने इस विषय में अनेक अनुसंधान किए। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि ग्रहों के दुष्प्रभाव से बचने के लिए अनेक उपायों में से एक उपाय है—रत्नों को शरीर पर धारण करना। ग्रहों के दुष्प्रभाव से बचाना रत्नों का अचिन्त्य प्रभाव है। ग्रह भाग्य को नहीं बदल सकते, किन्तु ग्रहों से आने वाले विकिरण को झेलने की क्षमता रत्नों में होती है और व्यक्ति का भाग्य बदल जाता है। रत्न ग्रहों के दुष्प्रभाव को अपने पर झेल लेते हैं और व्यक्ति का बचाव हो जाता है।

घटना का जो निमित्त बनता है, वह निमित्त टल जाता है। रत्नों की इस विशेषता को लक्ष्य करके ही कहा गया है कि मणि, मंत्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है।

एक आदमी के पास मूंगा था। उसको रेशमी कपड़े से ढंक दिया। उस कपड़े पर जलता हुआ अंगारा रखा। वस्त्र नहीं जला क्योंकि अंगारे की ऊष्मा को मूंगा खींच लेता है; कपड़े को जलने के लिए ऊष्मा ही प्राप्त नहीं होती।

इसी प्रकार रत्न ग्रहों के विकिरणों को अपने में समाविष्ट कर लेते हैं और व्यक्ति बच जाता है। रत्नों की इस क्षमता के कारण ही उनको अचिन्त्य प्रभाव वाला माना गया है।

आज के वैज्ञानिक लेसर किरण का उपयोग करते हैं। लाल रत्न से उसका आविष्कार किया गया। इस प्रसंग में मैं एक प्राचीन तथ्य की स्मृति दिलाना चाहता हूँ, जो विस्मृत हो चुका है। जैन आमों में वैक्रिय शरीर के निर्माण के विषय में अनेक प्रसंग उल्लिखित हैं। देवता वैक्रिय शरीर की संरचना करते हैं और लब्धिसंपन्न मनुष्य भी वैक्रिय शरीर की संरचना करते हैं। वैक्रिय शरीर का निर्माण करने वाला अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म परमाणु निकालता है और उस नए शरीर का निर्माण कर लेता है। जो वैक्रिय शरीर का निर्माण करते हैं वे उत्तम रत्नों के सूक्ष्म परमाणुओं को ग्रहण करते हैं। इन रत्नों के विकिरणों का संकलन कर नाना रूप बनाए जा सकते हैं और वैक्रिय शक्ति का विकास और उपयोग किया जा सकता है। इन सारे रहस्यों को ध्यान में रखकर कहा गया है कि रत्नों का प्रभाव अचिन्त्य होता है।

वनस्पति का प्रभाव भी कल्पनातीत होता है। सिद्धि के अनेक साधन हैं। औषधि से भी सिद्धि प्राप्त होती है, तप से भी सिद्धि प्राप्त होती है और समाधि से भी सिद्धि प्राप्त होती है। एक व्यक्ति अपने पैरों पर औषधियों के लेप करता है और आकाश में उड़ने लग जाता है। जैन परम्परा में 'पादलिप्तसूरी' नाम के आचार्य हुए हैं। वे अपने पैरों पर औषधियों का लेप करते और आकाश में उड़कर दूर-दूर देशों का भ्रमण कर आते। इस लेप के कारण ही उनका नाम 'पादलिप्त' पड़ा। वनस्पति के प्रयोग से आकाश में उड़ा जा सकता है, सुदूर को देखा जा सकता है, भीत से परे भी देखा

जा सकता है। भारतवर्ष में वनस्पति के विषय में बहुत अनुसंधान हुए हैं। एक प्राचीन ग्रन्थ है। उसमें औषधियों के बावन कल्प बतलाए गए हैं। प्रत्येक कल्प में अतीन्द्रिय क्षमता को जागृत करने और हमारे चिन्तन से परे की क्षमताओं का विकास करने का वर्णन किया गया है। वनस्पतियों की शक्ति अपार है। हम उनकी शक्तियों का एक अंश मात्र जानते हैं।

तीसरी बात है—मंत्र। मंत्र की शक्ति के विषय में भी हमारी कल्पना स्पष्ट नहीं है। हमने इतनी बड़ी संपदा को कैसे विस्तृत कर दिया ? मैंने इसे समझने का प्रयत्न किया। जैसे-जैसे मैंने इस विषय का अवगाहन किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि ध्यान और मंत्र को अलग नहीं किया जा सकता। ऐसे उन्हें नहीं बांटा जा सकता कि केवल ध्यान करें या केवल मंत्र-जप करें। मंत्रजप भी है और ध्यान भी है। यह दोनों है। हम इतना तो जानते हैं कि मंत्र-प्रयोग से बहुत बड़ा काम हो सकता है, किन्तु कैसे होता है, यह हम नहीं जानते। जब तक मंत्र-विधि को हम नहीं जानते, तब तक काम पूरा नहीं हो सकता।

आदिम युग की बात है। उस समय समाज का नया निर्माण हो रहा था। जो युगल थे, आदिवासी थे, वे सामाजिक बन रहे थे। वे ऋषभ के पास आए और बोले—‘बाबा ! हमनें खेती करनी सीख ली। खेतों में अनाज पक गया। हमने पका अनाज खाना शुरू कर दिया। किन्तु इस अनाज से पेट में दर्द होता है, अब क्या करें ?’ ऋषभ ने कहा—अनाज कच्चा नहीं खाया जाता। तुम अग्नि जलाना सीख लो। उसमें अनाज पकाकर खाओ फिर पेट में दर्द नहीं होगा।’ वे अपने-अपने घर गए। अग्नि जलाई, उसमें अनाज डाल दिया। अनाज जलकर राख हो गया। स्वयं क्या खाएं, सारा अनाज अग्नि खा गई। वे फिर ऋषभ के पास आए और समस्या का समाधान चाहा।

अग्नि में अनाज पकता है, इतना जान लेने मात्र से कुछ नहीं बनता। अग्नि में अनाज कैसे पकता है, यह जानना भी आवश्यक होता है। जब तक पूरी विधि हाथ नहीं आती, अधूरा सूत्र हमारा साथ नहीं दे सकता। उससे सफलता नहीं मिल सकती।

मंत्र से सफलता मिलती है। मंत्र से यह हो सकता है, वह हो सकता है, इतना जान लेना पर्याप्त नहीं होता। मंत्र से सफलता कैसे

मिलती है, इसे जानना भी जरूरी है। यह तब जाना जा सकता है जब हम अपनी शरीर-रचना की ओर ध्यान दें। हमारा केवल यह स्थूल शरीर ही नहीं है। साधना प्रारम्भ करने वाले व्यक्ति को सबसे पहले यह मानना जरूरी है कि मैं जो यह साधना कर रहा हूँ, वह केवल स्थूल शरीर के लिए ही नहीं कर रहा हूँ। स्थूल शरीर को लाभ होता है किन्तु मेरा उद्देश्य इससे आगे है, गहरा है। जो व्यक्ति स्थूल शरीर को पार कर भीतर नहीं झांक सकता, वह व्यक्ति साधना में विकास नहीं कर सकता। इस स्थूल शरीर से परे एक सूक्ष्म शरीर है। इस सूक्ष्म शरीर से परे एक अति सूक्ष्म शरीर है। स्थूल शरीर को हम औदारिक शरीर कहते हैं, सूक्ष्म शरीर को तैजस शरीर और अतिसूक्ष्म शरीर को कार्मण शरीर कहते हैं। थियोसोफिस्ट्स ने इन शरीरों की भिन्न संज्ञाएं दी हैं—फिजिकल बॉडी, एथेरिक बॉडी और एस्ट्रल बॉडी। फिजिकल बॉडी स्थूल शरीर है, एथेरिक बॉडी सूक्ष्म शरीर है और एस्ट्रल बॉडी अतिसूक्ष्म शरीर है। जब तक तैजस शरीर और कार्मण शरीर को प्रभावित नहीं किया जा सकता तब तक साधना सफल नहीं हो सकती, अध्यात्म की उपलब्धि नहीं हो सकती। अध्यात्म के नए-नए पर्यायों को उद्घाटित करने के लिए तैजस शरीर को जागृत करना जरूरी है और कार्मण शरीर को प्रभावित करना जरूरी है। इन दोनों शरीरों की जागृति के लिए तप का आलंबन आवश्यक होता है। जब तप के द्वारा मनोयोग के परमाणु, वचनयोग के परमाणु, काययोग के परमाणु, सूक्ष्म शरीर और अतिसूक्ष्म शरीर के परमाणु उत्पन्न होते हैं, तब वे अपने मलिन परमाणुओं को छोड़कर निर्मल बनते हैं और उस स्थिति में साधना की सफलता प्रारम्भ होती है। बिना तप के यह नहीं हो सकता। ताप के बिना कुछ भी नहीं पिघलता। ताप के बिना बर्फ भी नहीं पिघलती। उसको पिघलाने के लिए कुछ-न-कुछ ताप आवश्यक होता है। इसी प्रकार जो मल चिपटा हुआ है, उसे पिघालने के लिए तप ही एकमात्र साधन है। जब तप का ताप प्राप्त होता है, तब चिपके हुए परमाणु अपना स्थान छोड़ देते हैं। यही निर्मलता है, विशुद्धि है। इस तप की प्रक्रिया में, अशुद्ध परमाणुओं को उत्पन्न कर पिघलाने की प्रक्रिया में, मंत्र-साधना का बहुत

बड़ा योगदान है। मंत्र-साधना में हम ध्वनि के द्वारा अ-ध्वनि तक पहुंच जाते हैं। जब हम अ-ध्वनि तक पहुंच जाते हैं तब एक विशिष्ट प्रक्रिया आरम्भ होती है।

एक प्रश्न उपस्थित होता है कि हमारी साधना का सूत्र है—**संपिक्खए अप्पगमप्पएणं**—आत्मा के द्वारा देखो। यह भीतर जाने का सूत्र है। मंत्र और जप की ओर जाना बाहर जाना है। क्या यह विरोधाभास नहीं है? यह प्रश्न स्वाभाविक है। हम शब्द से अशब्द की ओर जाना चाहते हैं, अनात्मा से आत्मा की ओर जाना चाहते हैं। किन्तु जब हम मंत्र और जप का अनुसरण करते हैं तब वह बाहर की ओर जाना होता है। यह बाहर जाने का उपक्रम है।

प्रश्न स्वाभाविक है। उसका समाधान भी जटिल नहीं है। हम साधना में शरीर का आलंबन लेते हैं, ग्रन्थियों और प्राणशक्ति का आलंबन लेते हैं। शरीर आत्मा नहीं है। चैतन्य-केन्द्र, ग्रन्थियां और प्राणशक्ति आत्मा नहीं है। फिर भी हम इनका आलंबन इसलिए लेते हैं कि शरीर हमारे अस्तित्व का अभिन्न अंग है। मन, वाणी भी हमारे अस्तित्व के अभिन्न अंग हैं। जब हम शरीर, श्वास और प्राणशक्ति का आलंबन लेते हैं तब वाणी का आलंबन क्यों नहीं ले सकते? शरीर का आलंबन इसलिए लेते हैं कि शरीर के प्रकम्पनों को देखते-देखते सूक्ष्म शरीर—तैजस शरीर के प्रकंपनों को पकड़ने लग जाए। तैजस शरीर के प्रकंपनों को पकड़ते-पकड़ते हम कर्मशरीर के प्रकंपनों को पकड़ने लग जाएं। इस प्रकार सभी तरह के प्रकंपनों को पकड़ते-पकड़ते हम अप्रकम्प्य स्थिति में चले जाएं। इसलिए हम शरीर का आलंबन लेते हैं। हम शब्द का आलंबन इसलिए लेते हैं कि हम शब्द से शुरू करें और शब्द की विभिन्न अवस्थाओं को पार कर, अशब्द की अवस्था में पहुंच जाएं। विकल्प से यात्रा शुरू कर निर्विकल्प स्थिति तक पहुंच जाएं। इसीलिए शब्द का आलंबन लिया जाता है।

मंत्र शब्दात्मक होता है। उसमें अचित्यशक्ति होती है। उसके द्वारा आत्मिक जागरण किया जा सकता है, अध्यात्म के द्वार खोले जा सकते हैं, व्यक्ति अन्तर्मुखी बन सकता है और पूरा आध्यात्मिक बन सकता है। मंत्र के द्वारा और भी अनेक शक्तियों का जागरण हो सकता है। साधना तब तक सफल नहीं होती जब तक शक्ति का विकास नहीं होता, विस्फोट की

१० : एसो पंच णमोक्कारो

शक्ति उपलब्ध नहीं होती। जब तक विस्फोट की शक्ति उपलब्ध नहीं होती तब तक विस्फोट नहीं हो सकता। विस्फोट किए बिना अतल में छिपे रत्नों को बाहर नहीं निकाला जा सकता। हमें साधना के द्वारा विस्फोट की शक्ति को पैदा करना है। उस विस्फोट की शक्ति का सशक्त माध्यम है—मंत्र-साधना।

२. मंत्र क्या है ?

- मंत्र क्या है ?
- शब्द, ध्वनि, आवृत्ति, गति, तापक्रम, भावना और श्रद्धा का समन्वित चित्र मंत्र है।
- स्मृति, कल्पना और चिन्तन—सब शब्दात्मक होते हैं।
- शब्द हमें सर्वाधिक प्रभावित करता है।
- चंचलता क्या है ?
- शब्द—जल्प और अन्तर्जल्प
- ज्योति-दर्शन होने पर शब्द छूट जाता है।
- इड़ा, पिंगला के प्रवाह में बहिर्मुखता।
- सुषुम्णा जब खुलती है तब अन्तर्मुखता।
- जल्प (वैखरी) में शब्द और अर्थ में भेदाभेद।
- ज्ञान (पश्यन्ती) में शब्द और अर्थ में अभेद।
- यही मंत्र-साक्षात्कार है। इसके तीन फलित—
 १. विकल्प-शान्त
 २. आत्म-साक्षात्कार
 ३. शक्तियों का जागरण



हम शब्द से जितने प्रभावित हैं उतने और किसी से नहीं हैं। हमारा सारा जगत् शब्दमय है। भारत में एक दर्शन है। जो शब्द को ब्रह्म मानता है। वह है शब्दाद्वैतवाद। मैं इस दर्शन की मीमांसा नहीं कर रहा हूँ।

साधना की दृष्टि से जब गहरे में उतरकर देखता हूँ तो मुझे लगता है कि हम सबसे अधिक शब्द से प्रभावित हैं। सभी कहते हैं कि मन चंचल है। मुझे ऐसा नहीं लगता। मन चंचल नहीं है। मन के तीन कार्य हैं—स्मृति, कल्पना और चिंतन। मन अतीत की स्मृति करता है, भविष्य की कल्पना करता है और वर्तमान का चिंतन करता है। किन्तु शब्द के बिना न स्मृति होती है, न कल्पना होती है और न चिन्तन होता है। सारी स्मृतियाँ, सारी कल्पनाएँ और सारे चिंतन शब्द के माध्यम से चलते हैं। हम किसी की स्मृति करते हैं तब तत्काल शब्द की एक आकृति बन जाती है। उस आकृति के आधार पर हम स्मृत वस्तु को जान जाते हैं। कलकत्ता की स्मृति हुई और शब्द के माध्यम से हम कलकत्ता को जान गए। तर्कशास्त्र में स्मृति का एक आकार बताया है। वह आकार है—‘वह’। स्मृति शब्द के माध्यम से होती है।

हम किसी वस्तु की कल्पना करते हैं। उसमें भी शब्द माध्यम बनता है। आकृतियाँ बनती हैं।

हम चिंतन करते हैं। मन बाहर से पुद्गलों को ग्रहण करता है। वे शब्द की आकृतियों को ग्रहण करते हैं। चिन्तन भी शब्द के माध्यम से होता है।

मन के तीन कार्य—स्मृति, कल्पना और चिंतन शब्द के द्वारा निष्पन्न होते हैं। ये तीनों मन को चंचल बनाते हैं। यह दोष किसका है—मन का या शब्द का ? यह दोष वाक्-प्रयत्न का है या मन का ? यदि शब्द का सहारा न मिले, यदि मन को शब्द की बैसाखी न मिले तो मन चंचल हो नहीं सकता। मन लंगड़ा है। उसे चलने के लिए शब्द की बैसाखी चाहिए। मन की गति को सहारा मिलता है शब्द और वाक्-प्रयत्न से। इसे ही मन की चंचलता कह दिया जाता है। मन चंचल नहीं है। उसको चंचल कहना एक अनुश्रुति मात्र है। हम गहरे में उतर कर देखें तो ज्ञात होगा कि चंचलता मन की नहीं है। सारी चंचलता है ध्वनि की, शब्द की, भाषा की। यदि हमें मन को निर्विकल्प बनाना है, सारे विकल्पों को शांत करना है, मन को स्थिर करना है तो मन पर ध्यान देने की अपेक्षा शब्द पर अधिक ध्यान देना चाहिए। इसके लिए योग के आचार्यों ने कुछ उपाय सुझाए हैं। उनमें एक महत्त्वपूर्ण उपाय है—खेचरी मुद्रा। जीभ को तालु की ओर भोजना

खेचरी मुद्रा है। जब यह लगे कि विकल्पों का ज्वार आ रहा है, तब खेचरी मुद्रा करने पर विकल्पों का तांता टूट जाता है। जीभ को दांतों के बीच दबाए रखने से भी विकल्पों का प्रवाह रुक जाता है। एक उपाय यह भी है।—नीचे के दांतों की श्रेणी के पास ज्ञान-तंतु हैं, वहां जीभ को अटका दें, जीभ को स्थिर कर दें, सारे विकल्प शांत हो जाएंगे। जीभ और विकल्प का संबंध बहुत अटपटा-सा लग सकता है। प्रश्न उठ सकता है कि जीभ और विकल्प का संबंध ही क्या ? विकल्प का संबंध मन से तो हो सकता है, किन्तु जीभ से कैसे हो सकता है ? गहराई से पर्यालोचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विकल्पों का स्रोत है—शब्द, भाषा। भाषा का संबंध जीभ से है। जब जीभ स्थिर होती है, तब मन स्थिर होता है। जब जीभ चंचल होती है, तब मन भी चंचल हो जाता है। यह स्थायी अनुबंध है। मन में कोई इच्छा उत्पन्न होती है। उसे अभिव्यक्ति देने के लिए भाषा का माध्यम लेना पड़ता है। भाषा वाहन बनती है। मन उस वाहन पर चढ़कर अपने गंतव्य तक पहुंच जाता है।

जब तक हम मन की चंचलता के माध्यम को नहीं समझेंगे तब तक मन की चंचलता को नहीं मिटा पायेंगे। हमारे मन पर जो चंचलता आरोपित कर रखी है, उसे भी समाप्त नहीं कर पायेंगे। इसके लिए शब्द को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

शब्द अनेक प्रकार का होता है। मैं दो प्रकार के शब्द की ही चर्चा करूंगा। शब्द का एक प्रकार है—जल्प और दूसरा प्रकार है—अन्तर्जल्प। हम बोलते हैं, यह है जल्प। जल्प का अर्थ है—स्पष्ट वचन, व्यक्त वचन। हम बोलते नहीं, किन्तु मन से सोचते हैं, मन में विकल्प करते हैं, यह है अन्तर्जल्प। मुंह बंद है, होंठ स्थिर हैं, न कोई सुन रहा है, फिर भी मन में आदमी बोलता चला जा रहा है, यह है अन्तर्जल्प। सोचने का अर्थ ही है—भीतर में बोलना। सोचना और बोलना दो नहीं हैं। सोने के समय में भी हम बोलते हैं और बोलने के समय में भी हम सोचते हैं। जब हम जोर से बोलते हैं तब बाहर से बोलते हैं और जब मन में विकल्प करते हैं तो भीतर से बोलते हैं। एक है जल्प और दूसरा है अन्तर्जल्प। हम भीतर बोलने को बोलना नहीं मानते, बाहर बोलने को ही बोलना मानते हैं। किन्तु दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आदमी ने मन में सोचा—मुझे

बम्बई जाना है। उसने यह मन की बात अपने मित्र को कही। दोनों प्रसंगों में शब्द का सहारा लिया गया है। इस दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं है। एक मन की भाषा है और दूसरी बाहर की भाषा है। भाषा दोनों हैं। केवल जल्प और अन्तर्जल्प का अन्तर आया किंतु तात्त्विक अन्तर कुछ भी नहीं आया। यदि हम साधना के द्वारा, अध्यात्म चेतना के जागरण के द्वारा निर्विकल्प या निर्विचार अवस्था की ओर जाना चाहते हैं तो हमें शब्द को समझकर, उसके चक्रव्यूह को तोड़ना होगा। इसे तोड़े बिना केवल चैतन्य की अनुभूति का क्षण, केवल निर्विकार की अनुभूति का क्षण हमें प्राप्त नहीं हो सकता।

शब्द उत्पन्न होता है तब प्रयत्न सूक्ष्म है। जब वह प्रबल होता है तब शब्द स्थूल होता चला जाता है। शब्द की उत्पत्ति का यही क्रम है कि वह उत्पत्तिकाल में सूक्ष्म होता है और बाहर आते-आते स्थूल बन जाता है। जो सूक्ष्म है, वह हमें सुनाई नहीं देता। जो स्थूल होता है, वही हमें सुनाई देता है। ध्वनि-विज्ञान के अनुसार दो प्रकार की ध्वनियां होती हैं—श्रव्य ध्वनि अश्रव्य ध्वनि। अश्रव्य ध्वनि अर्थात् अल्ट्रा साउण्ड (Ultra Sound), सुपर सोनिक (Super Sonic) यह सुनाई नहीं देता। हमारा कान केवल ३२४७० कंपनों को ही पकड़ सकता है। कंपन तो अरबों होते हैं। किन्तु कान ३२४७० आवृत्ति के कंपनों को ही पकड़ सकता है, सूक्ष्म कंपनों को नहीं पकड़ सकता। यदि हमारा कान सूक्ष्म कंपनों को पकड़ने लग जाए तो आदमी जी ही नहीं सकता। आदमी कमरे में जाता है। चारों ओर दरवाजे बंद कर अपने को अकेला मानता है किन्तु कान यदि सूक्ष्म शब्दों को पकड़ने लग जाए तो ज्ञात होगा कि आदमी कहीं भी अकेला नहीं है। अकेले होने की बात मिथ्या है। हमारे चारों ओर इतना कोलाहल है यदि हम सारा सुन सकें तो पागल होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं बच सकता। किन्तु प्रकृति की इतनी सुन्दर व्यवस्था है कि कान उतने ही प्रकंपनों को सुन सकता है, जिससे कोई बाधा न आए। यह समूचा आकाश ध्वनि-तरंगों से प्रकंपित है। अनंत काल से इस आकाश में भाषा-वर्गणा के पुद्गल बिखरे पड़े हैं। एक आदमी बोलता है। वह बोल चुका। बोलते समय भाषा-वर्गणा के पुद्गल निकलते हैं और आकाश में जाकर स्थिर हो जाते हैं। हजारों-लाखों वर्षों तक वे उसी रूप में रह जाते हैं। फ्रांस के वैज्ञानिकों ने एक प्रयत्न

शुरू किया कि कोई ऐसा यंत्र बनाया जाए, जो अतीत के महापुरुषों की भाषा के परमाणुओं को पकड़ सके। उसके आधार पर यह देखा जा सके कि उन-उन महापुरुषों ने क्या कहा था और आज उनके नाम से जो चल रहा है, वह कितना यथार्थ है और कितना अयथार्थ। उन महापुरुषों ने वही बात कही थी, जो आज प्रचलित है या दूसरी बात कही थी ? इसे परखा जा सके, इसकी कसौटी की जा सके। अभी तक वे पूरे सफल नहीं हुए हैं, किन्तु यह आज असम्भाव्य नहीं रहा है। जैन सिद्धान्तों की यह बात है कि मनुष्य जो सोचता है, उसके मनोवर्गणा के पुद्गल करोड़ों वर्षों तक आकाश में अपनी आकृतियां बनाए रख सकते हैं। यदि कोई साधन विकसित किया जा सके, यदि कोई ऐसा यंत्र बन सके तो उन आकृतियों को पकड़ा जा सकता है।

यह सारा जगत् तरंगों से आन्दोलित है। विचारों की तरंगें, कर्म की तरंगें, भाषा और शब्द की तरंगें पूरे आकाश में व्याप्त हैं। व्यक्ति का मस्तिष्क और स्नायविक प्रणाली भी आन्दोलित हो रही है। इस स्थिति में मंत्र की उपयोगिता का आकलन किया जा सकता है। मंत्र क्या है और उसके द्वारा क्या किया जा सकता है, यह भी सोचने का अवसर मिलता है। मंत्र एक प्रतिरोधात्मक शक्ति है। मंत्र एक कवच है। मंत्र एक प्रकार की चिकित्सा है। संसार में होने वाले प्रकंपनों से कैसे बचा जा सकता है ? उनके प्रभावों को कैसे कम किया जा सकता है ? इन प्रश्नों का उत्तर है कि व्यक्ति प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करे और मंत्र की भाषा में कहा जा सकता है कि कवचीकरण का विकास करे। प्राचीन काल में योद्धा कवच पहनकर ही रणभूमि में उतरते थे। उन कवचों के आधार पर योद्धा शत्रुओं के प्रहारों को झेलने में समर्थ हो जाते थे। मंत्र-साधना कवच बनाने की साधना है। इससे आने वाले प्रकंपनों के प्रहारों से बचा जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर आभामंडल होता है, एक वलय होता है। अच्छा विचार होता है तो अच्छा आभामंडल बन जाता है। बुरा विचार होता है तो बुरा आभामंडल बन जाता है। अच्छा परिणाम अच्छी लेश्या। बुरा परिणाम बुरी लेश्या। हम मंत्रशक्ति का उपयोग करें और शब्दों की ऐसी संयोजना करें कि ऊर्जा का आभामंडल बने। हम उस शब्द-विन्यास का उच्चारण करें। सूक्ष्म उच्चारण करें या सूक्ष्मातिसूक्ष्म उच्चारण करें। उससे

ऊर्जा का आभावलय निर्मित होगा। वह इतना शक्तिशाली और इतना प्रतिरोधात्मक बनेगा कि बाहर की कोई भी शक्ति आक्रमण नहीं कर पाएगी। शब्द में अनंत शक्ति होती है। प्रत्येक अक्षर शान्ति से भरा होता है। मंत्रशास्त्र की जो खोजें हुई हैं, वे बड़ी अद्भुत हैं। उन खोजों ने जो विवरण प्रस्तुत किया, उसे हम भूल गए, अन्यथा हम औषधि के स्थान पर मंत्र का ही उपयोग करते। संदेशवाहक के स्थान पर हम मंत्र से ही काम लेते। समाचार मंगाने या प्रेषित करने के लिए हम मंत्र का ही उपयोग करते। सारा काम मंत्र से हो जाता।

मंत्रशक्ति का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। आचार्य भद्रबाहु ने संघ की सुरक्षा के लिए 'उवसगहरं स्तोत्र' का निर्माण किया। उसको संघ को देते हुए कहा—'जब भी कोई समस्या आए, विघ्न उपस्थित हो, उस समय इस स्तोत्र का उच्चारण करने पर देव प्रस्तुत होगा, संकट का निवारण करेगा। उपयोग और दुरुपयोग साथ-साथ चलते हैं। एक बहन रसोई बना रही थी। बछड़ा खूंट्टी पर बंधा था। वह रस्ती तुड़ाकर भाग गया। उस बहन ने सोचा कि रसोई छोड़कर जाना उचित नहीं है। मंत्र का प्रयोग क्यों न करूं ? उसने मंत्र जपा। देव उपस्थित हुआ। पूछा—'क्या संकट है ?' बहन ने कहा—'कोई संकट नहीं है। बछड़ा भाग गया है। उसे लाकर बांध दो।' देव ने आज्ञा का पालन किया। फिर देव ने आचार्य के पास जाकर सारी बात कही। आचार्य ने स्तोत्र में परिवर्तन कर दिया। उसके जाप से संकट तो दूर होता रहा किन्तु देव की साक्षात् उपस्थिति छूट गई।

'अ' से 'ह' तक प्रत्येक अक्षर का वर्ण होता है, स्वाद होता है। यदि हम उच्चारण की सूक्ष्मता में जाएं तो पता चलेगा कि अक्षरों के उच्चारण के साथ-साथ स्वाद में भी अन्तर आ रहा है। जब यह सूक्ष्म ज्ञान लुप्त हो गया तो मंत्र की शक्ति भी विस्मृत हो गई, उसकी चाबी हमारे हाथ से चली गई। मंत्रशक्ति शब्द की संयोजना पर निर्भर है। मंत्र-शक्ति का मुख्य तत्त्व है शब्द की संयोजना। किस उद्देश्य से मंत्र का उपयोग करना है, उस आधार पर शब्द की संयोजना की जाती है। जैसे रसायन शास्त्री जानता है कि किन-किन द्रव्यों को मिलाने से कौन-सा द्रव्य बनता है, वैसे ही मंत्रविद् जानता है कि किन-किन शब्दों की संयोजना से किस प्रकार के तरंग पैदा

होंगे, वे परमाणुओं को कैसे प्रकंपित करेंगे और उनकी परिणति किस प्रकार की होगी ?

एक प्रश्न आया कि मंत्र का आलंबन भी एक आलंबन है और एक कल्पना है। हां, यह ठीक है। किन्तु क्या कल्पना का कोई उपाय नहीं है ? आलंबन का कोई उपयोग नहीं है ? बहुत बड़ा उपयोग है कल्पना का और आलंबन का। कल्पना का दूसरा रूप बनता है संकल्प और संकल्प का तीसरा रूप बनता है—यथार्थ। पहले कल्पना की, संकल्प किया और कल्पना को दृढ़ निश्चय में बदला। तीसरे में वह यथार्थ बन गया।

अमेरिकी नौ-सैनिकों ने संकल्प-शक्ति के कुछ प्रयोग किए। एक सैनिक इलैक्ट्रिक स्विच के सामने जाकर खड़ा हो जाता है और बिजली के जलने का संकल्प करता है। स्विच दवाने की आवश्यकता नहीं होती। जैसे ही वह संकल्प करता है, स्विच ऑन हो जाता है, बिजली जलने लगती है। संकल्प-शक्ति के सहारे भारी लोहे की अलमारी कमरे के इस छोर से उस छोर तक पहुंच जाती है। पहले कल्पना की, फिर संकल्प किया और तीसरे स्टेज पर वह यथार्थ बन जाता है। इसका कारण भी समझें।

जब हम कल्पना को संकल्प की भूमिका तक लाते हैं तब सारे परमाणुओं में प्रकंपन शुरू हो जाता है। जिस दिशा में संकल्प के परमाणु जाते हैं, वे सारे आकाश-मंडल को प्रकंपित कर देते हैं। वह प्रकंपन इतना तीव्र हो जाता है कि कल्पना यथार्थ में बदल जाती है। आपने यहां बैठे कल्पना की कि आप कलकत्ता में बैठे अपने पुत्र से बात करना चाहते हैं या अपने मन के भाव उसे बताना चाहते हैं। आप एक आसन में बैठ जाएं और संकल्प को दोहराते चले जाएं। जब संकल्प तीव्र हो जाता है तब कोई आश्चर्य नहीं कि आप जो बताना चाहते हैं, उसे आपका पुत्र न जान पाए। आज जो विचार-संप्रेषण के प्रयोग किए जा रहे हैं, वे सारे संकल्प-शक्ति के प्रयोग हैं। कल्पना को व्यर्थ न समझें। उसका बहुत बड़ा उपयोग है। कल्पना व्यर्थ तब होती है जब वह योजनाबद्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में संकल्प बनता ही नहीं। व्यक्ति विकल्पों के जाल में फंस जाता है, कल्पना व्यर्थ बन जाती है। यदि योजनाबद्ध पद्धति से संकल्प-शक्ति का प्रयोग किया जाए तो हम यथार्थ तक पहुंच सकते हैं।

मंत्र विकल्प से निर्विकल्प तक पहुंचने की प्रक्रिया है। मंत्र सविचार से

निर्विचार तक पहुंचने की पद्धति है। मंत्र में पहला तत्त्व है—शब्द या ध्वनि। शब्द भाषात्मक होता है और ध्वनि झंकार रूप होती है, अव्यक्त होती है। शब्द का अर्थ के साथ कोई सीधा संबंध नहीं होता। शब्द और अर्थ में कुछ दूरी होती है। ध्वनि अर्थ के कुछ निकट चली जाती है। ‘दूध’ एक शब्द है। दूध कहने से पेट नहीं भरता। जहां हमारा शब्द होता है वहां दूध और दूध नाम के पदार्थ—इन दोनों में दूरी होती है। किन्तु जैसे-जैसे हमारी संकल्प-शक्ति दृढ़ होती है, भावना का प्रयोग होता है, ध्वनि सूक्ष्म होती चली जाती है, तब शब्द और अर्थ की दूरी कम होती चली जाती है। तब ऐसा होता है कि ‘दूध’ कहते ही दूध तैयार मिलता है। भारतीय साहित्य में तीन शब्द बहुलता से मिलते हैं—कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि रत्न। ये तीनों शब्द इतने शक्तिशाली होते हैं कि जो मांगा वह तैयार। शब्द और अर्थ की सारी दूरी समाप्त। शब्द के साथ-साथ अर्थ की घटना घट जाती है। ऐसा संकल्प-शक्ति के द्वारा भी हो सकता है, होता है। हमारी संकल्प-शक्ति ही कल्पवृक्ष है। हमारी संकल्प-शक्ति ही कामधेनु है और हमारी संकल्प-शक्ति ही चिन्तामणि रत्न है। ये तीनों कामनाओं की पूर्ति करते हैं। जो कामना को पूरा करे, वह कामधेनु। जो कल्पना को पूरा करे, वह कल्पवृक्ष और जो चिन्तन को पूरा करे, वह चिन्तामणि रत्न। ये सब हमारे संकल्प से भिन्न कुछ नहीं हैं। सब संकल्प ही है। संकल्प मंत्र का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जहां शब्द, ध्वनि और संकल्प-शक्ति तीनों का योग होता है वहां मंत्र की शक्ति जागृत हो जाती है, मंत्र का साक्षात्कार हो जाता है और मंत्र का देवता प्रकट हो जाता है। संकल्प-शक्ति के द्वारा जब आन्तरिक ज्योति का जागरण होता है, उस ज्योति का नाम ही है—देवता। जब हमारा शब्द ज्योति में बदल जाता है तब मंत्र का साक्षात्कार हो जाता है। मंत्र चैतन्य हो जाता है।

मंत्र का चौथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—श्रद्धा। श्रद्धा का अर्थ है—तीव्रतम आकर्षण। यदि मंत्र के प्रति हमारी कोई श्रद्धा नहीं है, कोई आकर्षण नहीं है, दृढ़ विश्वास नहीं है तो चाहे वर्ण का ठीक समायोजन हो, ठीक उच्चारण हो तो भी जो घटित होना चाहिए, वह घटित नहीं हो सकता। केवल श्रद्धा के बल पर जो घटित हो सकता है, वह श्रद्धा के बिना घटित नहीं हो सकता। पानी तरल है। जब वह जम जाता है, सघन

हो जाता है, वह बर्फ बन जाता है। जो हमारी कल्पना है, जो हमारा चिन्तन है, वह तरल पानी है। जब चिन्तन का पानी जमता है तब वह श्रद्धा बनती है, विश्वास बनता है। तरल पानी में कुछ गिरेगा तो वह पानी को गंदला बना देगा। बर्फ पर जो कुछ गिरेगा, वह नीचे लुढ़क जाएगा, उसमें धुलेगा नहीं। जब हमारा चिन्तन श्रद्धा में बदल जाता है, जब हमारा चिन्तन विश्वास में बदल जाता है, तब वह इतना घनीभूत हो जाता है कि बाहर का प्रभाव कम से कम हो जाता है। उस स्थिति में जो घटना घटित होनी चाहिए, वह सहज ही घटित हो जाती है।

हमने नमस्कार मंत्र के प्रथम चरण 'णमो अरहंताणं' का प्रयोग किया। आप न मानें कि हमने केवल 'ण' 'मो' आदि अक्षरों का ही प्रयोग किया है। हम इन अक्षरों को बचपन से जानते हैं, किन्तु इनकी अनन्त शक्ति से परिचित नहीं हैं। यदि हमने शब्द की शक्ति को जाना, वर्णों से बने पद को समझा, वर्णों का समायोजन किया, ध्वनि के सूक्ष्म उच्चारण को समझा, उसके साथ अपना संकल्प जोड़ा, गहरी श्रद्धा का उसमें नियोजन किया तो 'णमो अरहंताणं' ये सात अक्षर महान् देवता बन जाएंगे। यह पद पूरा चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष या कामधेनु बन जाएगा। इस सत्य को हम समझें।

अध्यात्म का अर्थ ही होता है—आत्मा के भीतर उतरना। केवल शरीर या केवल चमड़ी तक ही नहीं रहना है किन्तु इस शरीर और चमड़ी से परे जो है, वहां तक हमें पहुंचना है। यदि वहां पहुंचकर हम सूक्ष्म को समझने का प्रयत्न करें, सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन करने का प्रयत्न करें, उन दरवाजों को हम खोलें, जिनको आज तक हमने नहीं खोला है तो इस सप्ताक्षरी पद से अध्यात्म जागरण की पूरी प्रक्रिया में साधक को योगदान मिल सकता है।

३. मंत्र का प्रयोजन

- मन की शक्ति का उद्दीपन
- विचार-संप्रेषण
- ग्रहण और संप्रेषण
- मन की संवेदनशीलता का विकास
- ऊर्जा की वृद्धि
- दृष्टि में अंतर्मुखता का विकास
- वीतरागता का विकास, कषाय की क्षीणता



प्रेक्षा-ध्यान की साधना का सूत्र है—आत्मा के द्वारा आत्मा को देखना, स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना ! प्रश्न होता है—हम दूसरों को क्यों देखें ? अर्हत् को क्यों देखें ? आवश्यकता क्या है दूसरों को देखने की, जब हमें स्वयं को देखना है ? जब हम दूसरों को देखते हैं, तब प्रेक्षा-सूत्र से दूर चले जाते हैं, और कुछ घटित होता है। इस प्रश्न पर हमें विमर्श करना है।

संस्कृत के कवि ने कहा है—

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः, परत एव सम्भवति ।

स्वमहिमदर्शनमक्षणोर्मुकुरतले जायते यस्मात् । ।

गुणी मनुष्य भी अपने आपको समझने के लिए दूसरे का सहारा लेता है। वह दूसरे के द्वारा अपने को देखता है। आंख सबको देखती है, किन्तु अपने आपको देखने के लिए उसे दर्पण का सहारा लेना पड़ता है।

स्वयं को देखने के लिए कभी-कभी दूसरों का सहारा लेना पड़ता है।

हम शब्द का, मन्त्र का, रूप का और शरीर का सहारा लेते हैं। हम अर्हत् का सहारा लेते हैं, जिससे कि हम अपने को देख सकें। यह देखने के लिए आलंबन है, न कि अपने दर्शन की यात्रा से दूर जाने के लिए। हमसे केवल अन्तर्यात्रा ही हो। हमारा यात्रा-पथ निर्विघ्न हो। हमारा पथ पूर्ण आलोकित हो। कहीं कोई अंधकार न आए। इस सारे उपक्रम के लिए वैसे ही दूसरे का सहारा लेते हैं जैसे आंख अपने आपको देखने के लिए दर्पण का सहारा लेती है।

प्रश्न हो सकता है—क्या मन्त्र के द्वारा अपने आपको देखा जा सकता है ? क्या शब्द के द्वारा अपने आपको देखा जा सकता है ? आत्मा को देखा जा सकता है ? प्रश्न बहुत ही स्वाभाविक है। आत्मा को मंत्र और शब्द के द्वारा कैसे देखा जा सकता है ? आत्मा अ-शब्द है। शब्द की पहुंच वहां तक नहीं हो सकती। आत्मा अतर्क्य है। तर्क वहां तक नहीं पहुंच पाता। आत्मा अनिर्वचनीय है। वाणी वहां तक नहीं पहुंच पाती। आत्मा शब्दातीत, तर्कातीत और वचनातीत है। ऐसी स्थिति में क्या शब्द, तर्क और वचन आत्म-साक्षात्कार में सहयोग कर सकते हैं ? क्या ये साधन सक्षम हैं ?

इन प्रश्नों की समीक्षा में हमें मंत्र के प्रयोजनों पर विचार करना होगा। मन्त्र-शास्त्र ने मंत्र के प्रयोजनों का विवरण प्रस्तुत किया है। उसके मुख्यतः छह प्रयोजन निर्दिष्ट हैं—मारण, उच्चाटन, संपातन, विद्वेषण, मोहन और वशीकरण। मारने के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है। सम्मोहित करने के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है। उच्चाटन और विद्वेषण के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है। संतप्त करने के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है।

जम्बूकुमार ने आठ रमणियों के साथ विवाह किया। अपार धन दहेज में प्राप्त हुआ। पांच सौ चोर चोरी करने आए। माल एकत्रित किया। उसे उठाने लगे तो ज्ञात हुआ कि हाथ-पैर स्तंभित हो गए हैं। न हाथ उठता है और न पैर चलते हैं। चोरों का सरदार जम्बूकुमार के पास जाकर बोला—जम्बूकुमार ! मैंने तुम्हारी शक्ति देख ली। तुम बड़े मंत्रवादी हो। मैं तुम्हारे आगे नतमस्तक हूँ। मेरे पास दो विद्याएं हैं। एक है—अवस्वापिनी। इसके द्वारा सबको नींद दिलाई जा सकती है। दूसरी

है—तालोद्घाटिनी । इसके द्वारा ताले बिना चाबी घुमाए ही खुल जाते हैं । मैं ये दोनों विद्याएं तुम्हें देता हूँ और तुम मुझे अपनी स्तंभिनी विद्या दो । यह विद्या दोनों विद्याओं से भारी है, मूल्यवान् है ।

इस प्रकार के अनेक प्रयोजन हैं मंत्रविद्या के । मंत्रशास्त्रों में इन प्रयोजनों को छह भागों में बांटा गया है । ऐसा लगता है कि यह विभाजन मंत्रशास्त्र के प्रति, मंत्रों के प्रति भ्रांति का कारण बना है । जन-मानस में एक भ्रम फैल गया कि मंत्रों का अध्यात्म के लिए क्या उपयोग है ? अध्यात्म और मंत्र का संबंध ही क्या है ? कोई संबंध नहीं है । दोनों की दो भिन्न दिशाएं हैं । ऐसा इसलिए हुआ कि मंत्रों के छह प्रयोजन जब सामने आए तब लोगों ने सोचा—‘जो मंत्रविद् होते हैं, वे किसी को मार देते हैं, किसी का उच्चाटन कर देते हैं, किसी को वश में कर लेते हैं । यह मंत्र विद्या अच्छी नहीं है । इस प्रकार यह गलत भावना मंत्रों के प्रति पैदा हो गई ।

मंत्र एक शक्ति है । शक्ति का उपयोग अच्छे काम के लिए भी हो सकता है और बुरे काम के लिए भी हो सकता है । चाकू से ऑपरेशन भी होता है और चाकू से दूसरे का गला भी काटा जाता है । शक्ति शक्ति होती है । उसका अच्छा या बुरा प्रयोग करना प्रयोक्ता पर निर्भर करता है । शक्ति अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं होती ।

मंत्र एक शक्ति है, ऊर्जा है । उस शक्ति के द्वारा अध्यात्म का दरवाजा बंद भी किया जा सकता है और खोला भी जा सकता है । अध्यात्म के जागरण में मंत्र का बहुत बड़ा योग हो सकता है । इस भ्रांति को मिटा दें कि मंत्र-प्रयोग के केवल छह ही प्रयोजन हैं । समय-समय पर मंत्रों के अनेक प्रयोजन सामने आए हैं । मंत्रों से चिकित्सा होती है । मंत्रों के द्वारा भयंकर बीमारियां नष्ट होती हैं । अभी कुछ समय पूर्व नागपुर में मंत्रों के द्वारा चिकित्सा करने का उपक्रम चलाया गया था । फिलिपाईन के कुछ व्यक्ति बिना ऑपरेशन किए, बिना चीड़-फाड़ किए, पेट से गांठ निकाल देते हैं । आज के वैज्ञानिक इस खोज में हैं कि भविष्य में ऑपरेशन करते समय औजारों को काम में न लिया जाए किन्तु सूक्ष्म ध्वनि के द्वारा ऑपरेशन की क्रिया संपन्न कर दी जाए । मंत्र सूक्ष्म ध्वनि है । यह ध्वनितरंग है । ध्वनितरंगों का उपयोग आज अनेक क्षेत्रों में हो रहा है । हीरा कठोर धातु है । हीरे को हीरे से ही काटा जा सकता है, किन्तु आज सूक्ष्म ध्वनि से हीरे

काटे जाते हैं। पारा और पानी का मिश्रण नहीं होता। सूक्ष्म ध्वनि के प्रयोग से पारे में पानी मिल जाता है। सूक्ष्म ध्वनि से कपड़ों की धुलाई होती है।

नागपुर के पास खाकरी रेलवे स्टेशन है। वहां एक संस्था स्थापित हुई है। वह संस्था कृषि पर मंत्रों का अनुसंधान कर रही है। उसके कुछ प्रयोग सामने आए हैं। उन्होंने बैंगन, ककड़ी आदि बोए। एक खेत में रासायनिक खाद डाली गई, बीज बोए गए, पूरा पानी दिया गया, सुरक्षा की गई। दूसरे खेत में खाद नहीं डाली, केवल बीज बो दिए गए। उसमें मंत्रों के द्वारा अभिमंत्रित पानी सींचा गया। परिणाम यह आया कि जितने स्थान में रासायनिक खाद के द्वारा १६ किलो ककड़ी पैदा हुई, उतने ही स्थान में अभिमंत्रित जल के द्वारा ४० किलो ककड़ी हुई। जहां रासायनिक खाद की भूमि में ३५ किलो बैंगन हुए, वहां अभिमंत्रित जल के द्वारा ७० किलो बैंगन हुए। यह सारा सूक्ष्म ध्वनि का चमत्कार है।

ध्वनि के प्रयोग भावना के द्वारा वनस्पति पर किए गए। वनस्पति का बहुत विकास हुआ। गाय को संगीत सुनाते हैं। उसका दूध बढ़ जाता है। मंत्रों की ध्वनि से वातावरण को प्रकंपित किया जाता है। उन प्रकंपनों के द्वारा अद्भुत काम संपादित होते हैं। हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। मैं इस लम्बी चर्चा में नहीं जाऊंगा। मंत्र के द्वारा आध्यात्मिक जागरण संभव है, यह जान लेना चाहिए। यदि मंत्रों का आध्यात्मिक जागरण में प्रयोग किया जाए तो आध्यात्मिक जागरण में सरलता और सहजता आ जाती है।

दीर्घश्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा, चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा, लेश्या-ध्यान आदि के द्वारा बहुत लोग लम्बी यात्रा न कर सकें किन्तु मंत्र के माध्यम से अनेक व्यक्ति अध्यात्म की दिशा में लम्बी यात्रा कर सकते हैं। इसलिए प्रत्येक धर्म ने अपने-अपने मंत्रों का चुनाव किया और उनके द्वारा अपने धर्म की यात्रा शुरू की। वे आगे बढ़ते गए।

हमारी आध्यात्मिक जागरण की समस्या तब तक हल नहीं होती जब तक शरीर के चैतन्य-केन्द्र जागृत नहीं हो जाते, बहिर्मुखी वृत्ति टूट नहीं जाती, कामनाएं क्षीण नहीं हो जातीं, उनके प्रति हमारा आकर्षण समाप्त नहीं हो जाता। जब तक अन्तर्मुखी वृत्ति में रस और बहिर्मुखी वृत्ति की विरति नहीं होती तब तक समस्या हल नहीं होती।

दो धाराएं हैं—काम और निष्काम। इन धाराओं पर मंत्र के द्वारा बहुत बड़ा प्रयोग किया जा सकता है। बहिर्मुखी व्यक्ति अन्तर्मुखी कैसे बन सकता है, यह एक प्रश्न है। कोई व्यक्ति हजार बार भी किसी को कहे—कामनाओं को छोड़ो, निर्विकार बनो, परमार्थी बनो, विषयों की निवृत्ति करो। वह व्यक्ति सुनता है, बनना चाहता है पर बन नहीं सकता। यह समस्या कैसे समाहित हो ? अन्तर तब आता है जब कोई आंतरिक घटना घटित होती है। आंतरिक घटना घटित हुए बिना केवल शब्द के स्पर्श मात्र से अन्तर की संभावना और परिकल्पना नहीं की जा सकती। उस आंतरिक घटना का नाम है—रासायनिक परिवर्तन, जैविक-रासायनिक परिवर्तन। जब तक हमारे रसायनों में परिवर्तन नहीं होता, भीतर के स्रावों में परिवर्तन नहीं होता, ग्रन्थियों के हारमोन्स में परिवर्तन नहीं होता तब तक स्वभाव का परिवर्तन नहीं होता। मनुष्य-स्वभाव के परिवर्तन के लिए बहुत जरूरी है कि रसायनों का परिवर्तन हो, ग्रन्थियों के हारमोन्स का परिवर्तन हो। वह रासायनिक परिवर्तन औषधि के द्वारा भी होता है और मंत्र के द्वारा भी होता है। मन की दिशा को बदलने वाली औषधियों का आज प्रचुर प्रचार हो रहा है। आदमी एक गोली लेता है, मन शांत हो जाता है और ऐसे लोक की यात्रा करता है जहां विभिन्न दृश्य सामने आते हैं। मनुष्य सोचता है कि इस अशांत विश्व में शांति का अनुभव करने के लिए ये दवाइयां उपयुक्त हैं। वह गोलियां खाता है। हमने इस बात की पहले चर्चा की है कि औषधियों से क्या-क्या होता है। औषधि से सिद्धि प्राप्त होती है। औषधि से पूर्वजन्म को देखा जा सकता है। औषधि के द्वारा सूक्ष्म चीजों को देखा जा सकता है। औषधि के द्वारा दूर की वस्तुओं को देखा जा सकता है, सूक्ष्म लोक की घटनाओं का साक्षात् किया जा सकता है। यह इसलिए होता है कि दवा के द्वारा रासायनिक परिवर्तन होता है और इस परिवर्तन के होने पर हम दूसरे जगत् में चले जाते हैं।

जैसे औषधि के द्वारा रासायनिक परिवर्तन होता है, वैसे ही मंत्र के द्वारा रासायनिक परिवर्तन होता है। प्रत्येक अक्षर का अपना रसायन है। एक अक्षर का उच्चारण किया और एक प्रकार का रसायन निर्मित हो गया। 'र' के उच्चारण से तापमान बढ़ जाता है और 'ह' के उच्चारण से तापमान घट जाता है। 'हं' के उच्चारण से लीवर प्रभावित होता है, वह सक्रिय हो

जाता है। प्रत्येक वर्ण का अपना प्रभाव होता है, अपना पृथक् रसायन होता है। वह रसायन हमारे शरीर को प्रभावित करता है। मन्त्रशास्त्र ने वर्णमाला का एक पूरा व्याकरण बनाया। प्रत्येक अक्षर का व्याकरण है। प्रत्येक अक्षर पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है।

आध्यात्मिक जागरण की पहली बात है—सुषुम्ना का जागरण। हमारी प्राणधारा के तीन प्रवाह हैं—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—बायां स्वर, दायां स्वर और मध्य का स्वर। बायें को इड़ा, दायें को पिंगला और मध्य को सुषुम्ना कहा जाता है। सामान्यतः हमारा स्वर दायां-बायां चलता है, मध्य का स्वर कम चलता है। जब मध्य का स्वर चलता है, सुषुम्ना चलती है तब मन शांत होता है, विकल्प भी कम हो जाते हैं। जब दायां-बायां स्वर चलता है तब मनुष्य की वृत्ति बहिर्मुखी होती है। इन स्वरो में कामनाएं बढ़ती हैं, वासनाएं उभरती हैं। जब सुषुम्ना का उद्घाटन होता है तब मनुष्य के लिए अन्तर्मुखी, निष्काम और निर्विकार होने का द्वार खुलता है। प्राण की धारा जब सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगती है तब आध्यात्मिक जागरण प्रारंभ होता है। अध्यात्म जागरण का पहला बिन्दु या उस यात्रापथ का पहला चरण है—सुषुम्ना में प्राणधारा का प्रवेश। मंत्र के द्वारा ऐसा किया जा सकता है। मंत्र के द्वारा हम ऐसी सूक्ष्म ध्वनि-तरंगें पैदा करते हैं कि सुषुम्ना के द्वार खुल जाते हैं और व्यक्ति में आध्यात्मिक जागृति की किरण फूट पड़ती है।

सुषुम्ना की यात्रा अध्यात्म की यात्रा है—यह शरीरशास्त्रीय दृष्टिकोण है। दूसरा पहलू है—कषायों का उपशमन। जब कषाय क्षीण या उपशांत होते हैं तब अध्यात्म की यात्रा प्रारम्भ होती है। प्रश्न होता है कि क्या मंत्रों के द्वारा कषाय क्षीण होते हैं? क्या मंत्रों के द्वारा तनाव कम होता है? क्या मंत्रों के द्वारा भय, घृणा, वासना, विकार मिटते हैं? हां, मिटते हैं। ‘णमो अरहंताणं’—इस सप्ताक्षरी मंत्र के जाप से कषाय क्षीण होते हैं। ‘णमो अरहंताणं’ के जाप की चौसठ विधियां हैं। तैजस केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से क्रोध उपशांत होता है, क्षीण होता है। आनन्द केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से मान, अहंकार क्षीण होता है। विशुद्धि केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से माया क्षीण होती है। तालु केन्द्र में इसका ध्यान करने से लोभ क्षीण होता है। इस मंत्र के द्वारा सारे कषाय क्षीण होते हैं।

मंत्र से उत्पन्न होने वाली ध्वनि-तरंगों के द्वारा, मंत्र के साथ घुलने वाली भावना के द्वारा, संकल्पशक्ति और मंत्र के साथ होने वाली गहन श्रद्धा के द्वारा तथा मंत्र के साथ होने वाले इष्ट के साक्षात्कार के द्वारा कषाय नष्ट होते हैं।

‘णमो अरहंताणं’ की चार चरणों में आराधना की जाती है। पहला चरण है—अक्षर ध्यान। प्रत्येक अक्षर का ध्यान। ज्ञानकेन्द्र में श्वेत वर्ण के साथ एक-एक अक्षर का ध्यान। दूसरा चरण है—पूरे पद का ध्यान। तीसरा चरण है—पूरे पद ‘णमो अरहंताणं’ के अर्थ का ध्यान। इस पद का अर्थ है—अर्हत् को नमस्कार। अर्हत् का अर्थ है—पूर्ण आत्मा। जब तक अपूर्णता है तब तक अर्हत् स्वभाव प्रकट नहीं होता। अज्ञान एक अपूर्णता है। शक्तिहीनता एक अपूर्णता है। सुख-दुःख की अनुभूति एक अपूर्णता है। दर्शन और चारित्र्य की न्यूनता एक अपूर्णता है। जब तक ये अपूर्णताएं हैं तब तक अर्हत् तत्त्व का विकास नहीं हो सकता। हमने अर्हत् स्वरूप का ध्यान नहीं किया, इसलिए अपूर्णताएं चल-रही हैं। तीसरा चरण है—अर्हत् का ध्यान—ज्ञान की पूर्णता का ध्यान, दर्शन की पूर्णता का ध्यान, शक्ति की पूर्णता का ध्यान और आनन्द की पूर्णता का ध्यान। चौथा चरण है—अपने अर्हत् का ध्यान। अर्हत् कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है, ‘मैं स्वयं अर्हत् हूं’—इस स्वरूप का ध्यान।

मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त ज्ञान विद्यमान है।

मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त दर्शन विद्यमान है।

मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त शक्ति विद्यमान है।

मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त आनन्द विद्यमान है।

हमने इन चारों चरणों का ध्यान किया। हम बाहर से चले, भीतर तक पहुंच गए। हम दूसरे से चले और अपने तक पहुंच गए। हम सालम्बन से चले और निरालम्बन तक पहुंच गए। ‘णमो अरहंताणं’—इस पद के द्वारा हमने अपने को समझने और अपने स्वरूप को प्रकट करने का प्रयत्न किया।

व्यक्ति के मन में अकारण ही चिन्ता जाग जाती है, मन शोक से भर

जाता है, मन बेचैन हो जाता है। घबराने की बात नहीं है। आपके पास ऐसा उपाय है, जिससे चिन्ता, शोक, बेचैनी—सारे समाप्त हो जाते हैं। वैज्ञानिक एक ऐसी टिकिया बनाने के लिए सोच रहे हैं, जिसके सेवन से सुख कभी खण्डित नहीं होता। चाहे कोई स्वजन मर जाए, दुर्घटना हो जाये, धन चला जाये, सत्ता चली जाये, सुख में कोई अन्तर नहीं आता।

शरीरशास्त्रियों ने बताया कि मनुष्य के शरीर में दो प्रकार की ग्रन्थियां हैं। एक है सुख की ग्रन्थि और दूसरी है दुःख की ग्रन्थि। दोनों एक-दूसरे से सटी हुई हैं। यदि सुख की ग्रन्थि सक्रिय हो जाए तो सुख-ही-सुख है, चाहे परिस्थिति कुछ भी क्यों न हो। और यदि अकस्मात् दुःख की ग्रन्थि सक्रिय हो जाए तो दुःख-ही-दुःख है, चाहे फिर विश्व का साम्राज्य ही क्यों न मिल जाए। बड़ा खतरा है। सुख की ग्रन्थि को सक्रिय करने की प्रक्रिया में यदि दुःख की ग्रन्थि सक्रिय हो जाए तो व्यक्ति अनन्त दुःख के सागर में डूब जाता है। फिर उबरने का उपाय कठिन है।

हम इन औषधियों और ग्रन्थियों के चक्कर में न जाएं। ऐसा निरापद मार्ग खोजें, जहां खतरा न हो। वह मार्ग है—मंत्र साधना। मंत्रों के द्वारा सभी प्रकार की स्थितियों से निपटा जा सकता है। सारी समस्याएं हल हो सकती हैं।

आज की सबसे बड़ी समस्या है—विचार प्रदूषण की। आज के वायुमंडल में इतने दूषित विचार बिखर रहे हैं कि जो आदमी बुरा विचार करना भी नहीं चाहता, वह बुरा विचार कर बैठता है। बुरे विचार बुरे संस्कारों के कारण पैदा होते हैं, यह एक सचाई है। किन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है। वायुमंडल में फैले हुए बुरे विचारों के परमाणु जब सिर से टकराते हैं तब भी बुरे विचार पैदा हो जाते हैं। आदमी अपने बुरे संस्कारों का शोधन करने के लिए तपस्या करता है। वह चाहता है कि बुरे विचार न आएँ किन्तु बाहर के वायुमंडल को प्रकंपित करने वाले ये बुरे विचारों के परमाणु उसके विचारों को भी बुरा बना देते हैं। यह एक सघस्क समस्या है। मंत्र-साधना के द्वारा इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। मंत्र-साधना के द्वारा व्यक्ति अपनी ऊर्जा को इतना प्रबल बना देता है, आभामंडल को इतना शक्तिशाली बना देता है, अपने लेश्या के कवच को इतना सक्षम बना देता है कि आने वाले बुरे विचारों के परमाणु उसको

प्रभावित नहीं कर पाते, उसके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं कर पाते। यह संभव है।

मंत्र की साधना करने वाला व्यक्ति जानता है कि मंत्र की साधना से खतरा पैदा हो सकता है। यह अध्यात्म मंत्र की साधना की बात नहीं है। जो व्यक्ति और-और मंत्रों की साधना करते हैं, उनके समक्ष अनेक खतरे पैदा हो जाते हैं। इसलिए मंत्र-साधक सबसे पहले कवचीकरण करता है। वह अपने शरीर की सुरक्षा के लिए शरीर के एक-एक अवयव के लिए कवच बनाता है। वह वज्र पंजर बनाता है। एक-एक अवयव की प्रेक्षा करता है।

मंत्र की साधना करने वाला साधक ध्यान की मुद्रा में बैठ कर, शरीर की सुरक्षा के लिए कवच का निर्माण करने के लिए कहता है—भगवान् ऋषभ मेरे सिर की रक्षा करें। भगवान् अजित मेरे भाल की रक्षा करें। भगवान् संभव और अभिनन्दन मेरे दोनों कानों की रक्षा करें। इस प्रकार एक-एक अवयव की रक्षा का विन्यास कर वह साधक पूरे शरीर की रक्षा करता है, कवच तैयार करता है, वज्रपंजर बना लेता है। इस प्रकार वह सुरक्षित होकर मंत्र-साधना करने बैठता है, जिससे कि बाहर का कोई असर न हो, खतरा न हो।

नमस्कार महामंत्र का वज्रपंजर है। जैसे अन्यान्य मंत्रों की साधना करने वाला कवच बनाता है, वैसे ही अध्यात्म मंत्र की साधना करने वाला ध्यान के द्वारा अपने शरीर की पूरी सुरक्षा कर लेता है। फिर बाहर के बुरे विचारों के परमाणु भीतर प्रवेश नहीं पा सकते। इस तथ्य को समझ लेने के बाद यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि कुछ मंत्र ऐहिक सिद्धि देने वाले हैं और कुछ मंत्र अध्यात्म जागरण में सहायक बनते हैं। हमने अध्यात्म जागरण और अध्यात्म की यात्रा के लिए जिस मंत्र का चुनाव किया है—‘णमो अरहंताणं’ वह इतना शक्तिशाली और तेजस्वी मंत्र है कि उसके द्वारा आध्यात्मिक उपलब्धियों के साथ-साथ ऐहिक उपलब्धियाँ भी होती हैं। इस मंत्र की साधना के द्वारा अध्यात्म का समूचा मार्ग आलोकित होता है और हमारी यात्रा निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होती है।

४. मंत्र का साक्षात्कार

- संभेद—वाचक पद के साथ ध्याता का संबंध ।
- अभेद—वाच्य अर्थ के साथ ध्याता का एकीभाव ।
- तात्त्विक मंत्र निर्विकल्प होता है ।
- जल्प विकल्पात्मक ।
- संजल्प से विकल्प क्षीण होते हैं, निर्विकल्पता की प्राप्ति ।
- विमर्श निर्विकल्प संवित् । इसमें अर्थ का साक्षात्कार ।
- यही अभेद प्रणिधान या तात्त्विक मंत्र ।
- दर्शन-केन्द्र पर मंत्र पहुंचने से राग-द्वेष की क्षीणता ।



अनंत की अनुभूति तब तक नहीं हो सकती, जब तक कषाय क्षीण नहीं होता। जब तक हमारा मन रंग से रंगा हुआ होता है, हमारी चेतना रंगीन होती है तब तक अनन्त की अनुभूति नहीं हो सकती। कषाय के दो संवाहक हैं—अहंकार और ममकार। अहंकार और ममकार जब तक विलीन नहीं होते, तब तक हमारी सान्तता समाप्त नहीं होती। सान्तता समाप्त हुए बिना अनन्त की अनुभूति नहीं होती। अनन्त की अनुभूति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है अहंकार और ममकार का विलय।

‘णमो अरहंताणं’—इस मंत्र के द्वारा कषाय क्षीण होता है इसे हम प्रमाणित करें। ‘णमो’ यह नमन है, समर्पण है। अपने पूरे व्यक्तित्व का समर्पण। इससे अहंकार विलीन हो जाता है। जहां नमन होता है वहां कोई अहंकार टिक नहीं सकता। अहंकार निःशेष और सर्वथा समाप्त। जहां

अर्हत् है, वहां ममकार नहीं हो सकता। ममकार पदार्थ के प्रति होता है। अर्हत् चेतना का पिंड है, चेतना का स्वरूप है। चेतना के प्रति कोई ममकार नहीं हो सकता। ममकार पदार्थ के प्रति होता है। जहां चेतना का अनुभव जागता है, एक क्षण-भर के लिए भी चेतना की लौ का अनुभव होता है, वहां ममकार विलीन हो जाता है। पदार्थ का आकर्षण छूट जाता है। पदार्थ के पिंजड़े में जकड़ा हुआ आदमी अपने आपको स्वतंत्र अनुभव करता है। 'णमो अरहंताणं'—यह अहंकार और ममकार को विलीन करने वाला परम औषध है। यह एक मंत्र है। इसका जप किया जाता है। मंत्र का अर्थ होता है—गुप्त भाषा, गुप्त बात। मंत्र शब्द मंतृ धातु से बना है। इसका अर्थ है—गुप्त बोलना, गुप्त अनुभव करना। यह गुप्तवाद है, रहस्यवाद है। जब तक रहस्य को नहीं समझा जाता, तब तक मंत्र का कोई अर्थ नहीं होता। जब तक चाबी हाथ नहीं लगती तब तक ताला नहीं खुलता। जब तक मंत्र की यह गूढ़ चाबी हस्तगत नहीं होती तब तक मंत्र के द्वारा अहंकार और ममकार का विलय नहीं किया जा सकता। यह सप्ताक्षरी मंत्र 'णमो अरहंताणं' हमारे सामने है। एक-एक अक्षर हमारे सामने है। न जाने कितने लोग इस मंत्र का जप जीवन-भर करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि जीवन-भर जप करने पर भी कषाय क्षीण नहीं हुए, अहंकार और ममकार क्षीण नहीं हुए। क्या केवल ध्वनि मात्र से, केवल उच्चारण मात्र से वैसा हो जाएगा ? वह सब हो जाएगा, जो होना चाहिए ? मुझे यह संभव नहीं लगता। ध्वनि-विज्ञान ने यह बताया कि श्रव्य ध्वनि के द्वारा बहुत बड़ी घटना घटित नहीं होती। एक व्यक्ति तीन वर्ष तक श्रव्य ध्वनि करता रहे तो मात्र इतनी-सी ऊर्जा पैदा होती है कि एक प्याला पानी गर्म किया जा सके। तो क्या इस स्थूल उच्चारण के द्वारा कषाय क्षीण हो जाएगा, जो इतने सूक्ष्म में बैठा है ? क्या वह तप जाएगा ? पिघल जाएगा ? अपना स्थान छोड़ देगा ? यह संभव नहीं लगता। यह कोरा उपचार है। यह हमें लक्ष्य तक नहीं पहुंचा पाएगा। इस बिन्दु पर पहुंचकर हमें सिंहावलोकन करना चाहिए। केवल उच्चारण ही पर्याप्त नहीं है। केवल ध्वनिया जप ही पर्याप्त नहीं है। कोरा स्थूल जप लाभप्रद नहीं होता जब तक वह जाप ध्यान में नहीं बदल जाएगा तब तक उसके द्वारा वह प्राप्त नहीं होगा जो होना चाहिए। तब तक मंत्र का चमत्कार हमारे सामने नहीं आएगा। हमें जप

को ध्यान तक पहुंचाना है। जप और ध्यान के भेद को समाप्त करना है। यह जप ही नहीं है। इसका नाम है—शब्दगत ध्यान, शब्द के आलम्बन से किया जाने वाला ध्यान।

ध्यान के दो प्रकार हैं—भेद ध्यान और अभेद ध्यान। जहां भेद ध्यान है वहां ध्यान करने वाले व्यक्ति का शब्द के साथ मात्र संबंध होता है। ध्यान करने वाला व्यक्ति 'णमो अरहंताणं' शब्द का उच्चारण करता है तो बोलने वाले का ध्वनित होने वाले शब्द के साथ यह संबंध स्थापित हो जाता है कि अमुक व्यक्ति ने 'णमो अरहंताणं' यह शब्द बोला है। किन्तु दोनों में तादात्म्य स्थापित नहीं होता। दोनों का भेद समाप्त नहीं होता। शब्द अलग रहता है। दोनों के बीच दूरी बनी रहती है।

जब यह भेद आगे की यात्रा कर अभेद तक पहुंच जाता है तब शब्द समाप्त हो जाता है। ध्यान करने वाले व्यक्ति का संबंध उस शब्द के अर्थ से जुड़ जाता है। 'णमो अरहंताणं' का अर्थ और ध्यान करने वाले व्यक्ति में एकीभाव स्थापित हो जाता है। दोनों में तादात्म्य स्थापित हो जाता है। फिर 'णमो अरहंताणं' का ध्यान करने वाला और अर्हत् दो नहीं रहते, एक हो जाते हैं। अर्हत् की दूरी समाप्त हो जाती है। हमारा अर्हत् उसमें लीन हो जाता है और वह प्रकट हो जाता है। हमें इस प्रक्रिया को समझना है कि शब्द से अशब्द तक कैसे पहुंचें ? इस प्रक्रिया को समझे बिना निर्विकल्प तक पहुंचने का हमारा स्वप्न पूरा नहीं हो सकता।

मंत्रशास्त्र के तीन स्तम्भ हैं जल्प, संजल्प और विमर्श। 'णमो अरहंताणं'—यह जल्प है। इसे मंत्रशास्त्रीय भाषा में बैखरी कहा जाता है। जब 'णमो अरहंताणं' स्थूल उच्चारण से छूटकर मानसिक उच्चारण बन जाता है, मन में पहुंच जाता है, दूसरों को सुनाई नहीं देता, होंठ भी नहीं हिलते, उच्चारण के जितने स्थान हैं उनमें कोई प्रकंपन नहीं होता, उनमें कोई छेदन नहीं होता, केवल मन की धारणा के साथ 'णमो अरहंताणं', 'णमो अरहंताणं' बार-बार प्रकट होता रहता है, वह है संजल्प—अन्तर्जल्प। जल्प छूट गया। उच्चारण छूट गया। अंतर्वाणी बन गई। मौन हो गया, किन्तु अन्तर में वह चक्राकार रूप में चल रहा है। जल्प में शब्द और अर्थ का भेद होता है। शब्द अलग, अर्थ अलग। अग्नि शब्द अलग और अग्नि अर्थ अलग। जो अग्नि जलाती है, जो अग्नि प्रकाश देती है, जो अग्नि ताप देती है, वह

अग्नि चूल्हे में है और शब्द हमारे मुंह में है। वहां भेद होता है। जब अन्तर्जल्प में हम पहुंचते हैं तब वहां शब्द और अर्थ में भेद और अभेद दोनों हो जाते हैं। न पूरा भेद होता है और न पूरा अभेद होता है। वहां भेदाभेदात्मक स्थिति का निर्माण हो जाता है। उस स्थिति में अग्नि शब्द के उच्चारण के साथ दाह की क्रिया भी शुरू हो सकती है। दीपक राग जब गायी जाती है, दीये जल जाते हैं, मेघ राग गाने पर मेघ बरसने लग जाते हैं। शब्द और अर्थ की दूरी कम हो जाती है, समाप्त हो जाती है। अन्तर्जल्प की स्थिति में जो उच्चारण होता है, वहां पर घटना घटित होने लग जाती है। जैसे ही अग्नि का उच्चारण किया, दाह की क्रिया शुरू हो जाएगी, जलन की क्रिया शुरू हो जाएगी। पदार्थ जलने लग जाएगा। यह अनुग्रह और निग्रह क्या है ? यह वरदान और अभिशाप क्या है ? मंत्रविद् अनुग्रह भी करना जानता है और निग्रह भी करना जानता है। वह वरदान देना भी जानता है और अभिशाप देना भी जानता है। जो व्यक्ति इस स्थिति तक पहुंच जाता है, उसके मुंह से जो भी शब्द निकला, वह शब्द अर्थ की दूरी को समाप्त कर अर्थ की घटना को घटित करने लग जाता है। वही क्रिया होने लग जाती है। 'तथास्तु' कहने की जरूरत है। 'तथास्तु' कहते ही जलाना है तो सामने वाला व्यक्ति जलने लग जाएगा। किसी को मिटाना है तो वह मिटने लग जाएगा, समाप्त होने लग जाएगा।

प्राचीन घटना है। वैश्यायन बाल-तपस्वी ने आजीवक संप्रदाय के प्रवर्तक गोशालक पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया। उसके मुंह से आग के गोले निकलने लगे और गोशालक का शरीर जलने लगा। महावीर ने देखा। गोशालक उनके साथ था। उन्होंने तत्काल शीतल लेश्या का प्रयोग किया। अग्नि शांत हो गई। तेजोलेश्या प्रतिहत हो गई। अन्तर्जल्प की स्थिति में शब्द और अर्थ की दूरी समाप्त हो जाती है।

तीसरी स्थिति है अभेद की। वहां शब्द बिलकुल छूट जाता है, केवल अर्थ रह जाता है। मंत्रशास्त्रीय भाषा में पहली और दूसरी स्थिति को 'मध्यमा' कहा जाता है और इस तीसरी स्थिति को 'पश्यन्ती' कहते हैं। यहां शब्द छूट गया, अर्थ रह गया। ध्यान करने वाले व्यक्ति का अर्थ के साथ तादात्म्य जुड़ गया, एकीभाव हो गया। उस एकीभाव की स्थिति में ध्यान करने वाला और ध्येय दो नहीं होते, वह व्यक्ति स्वयं ध्येय के रूप

में बदल जाता है। ध्येय समाहित हो जाता है। सर्वथा अभेद की स्थिति प्राप्त हो जाती है। कोई भेद नहीं रहता। सैद्धांतिक परिभाषा में पहली स्थिति है वाक्, दूसरी स्थिति है वाक् का क्षयोपशम, वाक् की शक्ति और तीसरी स्थिति है ज्ञान का उपयोग। जब वाक् समाप्त हो जाती है तब अभेद की स्थिति स्थापित होती है। इस स्थिति में मंत्र का साक्षात्कार होता है, मंत्र का देवता प्रकट होता है। वह देवता बाहर से नहीं आता। हम इस भूल को सुधारें कि कोई देवता बाहर से आता है। अभेद की स्थिति का होना ही मंत्र का साक्षात्कार है, मंत्र का देवता है। यह है मंत्र का चैतन्य या मंत्र का जागरण। हमारे तैजस शरीर की स्थिति इतनी शक्तिशाली बन जाती है, हमारे विद्युत् शरीर की स्थिति इतनी तेजस्वी बन जाती है कि हम जो चाहते हैं, वह स्थिति प्रकट हो जाती है। इस स्थिति में 'णमो अरहंताणं' जल्प से छूटकर अन्तर्जल्प में चला जाता है, वाक् से छूटकर मानसिक स्थिति में चला जाता है और मानसिक स्थिति को पार कर अभेद की स्थिति में चला जाता है। उस स्थिति में 'णमो अरहंताणं' का साक्षात्कार होता है और फिर उसके द्वारा जो घटित होना चाहिए, वह सब कुछ घटित हो जाता है। हम भूमिकाओं को पार न करें, एक ही भूमिका में बैठे रहें और सोच लें कि साक्षात् हो जाएगा, क्योंकि हमारी आंखों में देखने की शक्ति है। तो यह भ्रांति होगी। आंखों में देखने की शक्ति है। वह समूचे विश्व को देख सकती है, किन्तु एक स्थान पर बैठकर हम उससे समूचे विश्व को नहीं देख सकते। हम सीमा को पार करें, अवरोध को पार करें और आगे बढ़ें तो इन आंखों से समूचे विश्व को देख सकते हैं। किन्तु एक स्थान पर बैठकर कितना ही प्रयत्न करें; पचास वर्ष तक आंखों को फाड़े-फाड़े बैठे रहें तो इस भीत के परे की वस्तु भी नहीं दीखेगी। उसे देखने के लिए हमें इस स्थान से चलकर भीत के परे जाना होगा। हमें सीमाओं को पार करना होगा। भूमिकाओं का विकास करना होगा। आगे बढ़ना होगा। केवल ध्वनि पर अटक जाते हैं, तो मंत्र की शक्ति पर संदेह होने लग जाता है। व्यक्ति सोचता है—इतने वर्ष बीत गए, इतनी मालाएं जपीं, फिर भी कुछ नहीं हुआ। सुना तो था कि मंत्र बहुत शक्तिशाली है, पर उसका फल कुछ भी नहीं मिला। ऐसा हो सकता है कि या तो मंत्रनिर्माताओं ने कहीं कोई भूल की है, या फिर उसका महत्त्व बताने वालों ने कहीं कोई त्रुटि की है

या जपने में कहीं कोई त्रुटि रही है। तीनों में से किसी-न-किसी की भूल अवश्य ही होनी चाहिए। मंत्रद्रष्टा ऋषि की भूल हो, मंत्रदाता गुरु की भूल हो या मंत्र जपने वाले व्यक्ति की भूल हो—तीनों में से एक की भूल अवश्य ही रही है।

मंत्रद्रष्टा ऋषि ने भूल नहीं की, क्योंकि उन्होंने बहुत गहरे में जाकर, बहुत सूक्ष्म में जाकर मंत्रों का निर्माण किया। मंत्रस्रष्टा में प्रकृति का पूरा ज्ञान, पौद्गलिक परिवर्तनों का पूरा ज्ञान और मात्रिका का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। जब यह होता है तब कोई मुनि मंत्रस्रष्टा बनता है, मंत्रों का निर्माण करता है। अन्यथा उसका कोई मंत्र नहीं बन सकता। ऐसे व्यक्ति की भूल संभव नहीं है। अब भूल की ज्यादा संभावना दो व्यक्तियों की रह जाती है—मंत्रदाता की भूल या मंत्र जपने वाले की भूल। इसकी चर्चा में जाना अपेक्षित नहीं है। एक बात स्पष्ट ध्यान में रहनी चाहिए कि मंत्र का जप करने वाला साधक ध्वनि को ही मंत्र की समाप्ति न मान बैठे। वह अगली भूमिकाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। केवल तलघर में ही न बैठा रहे। मकान की ऊपरी मंजिलों तक जाने का प्रयास करे। केवल तलहटी पर ही न रुके; शिखर पर चढ़ने का प्रयत्न करे। जब हमारा ऊर्ध्व आरोहण होगा तब सारे पर्याय अपने-आप उद्घाटित होते चले जाएंगे। जो दिशाएं बंद हैं, जो दरवाजे और खिड़कियां बंद हैं, सब अपने आप खुलती चली जाएंगी। हमें तलहटी से चलना होगा। तलहटी को पार कर हम शिखर तक पहुंच सकते हैं। शक्तिकेन्द्र है तलहटी और ज्ञानकेन्द्र है शिखर। इससे ऊंचा कोई दूसरा शिखर नहीं है। हिमालय की यह सबसे ऊंची चोटी है। हमें शक्तिकेन्द्र से यात्रा आरम्भ करनी है और ज्ञानकेन्द्र तक पहुंचना है। लगता है कि यात्रा बहुत छोटी है, केवल एक-दो फुट की यात्रा। शक्तिकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र की बड़ी दूरी नहीं है। थोड़ी दूरी है। एक-दो डग भरने की जरूरत। यात्रा सम्पन्न। यह छोटी यात्रा। छोटा भी कभी-कभी बड़ा खतरनाक होता है। बड़ा जितना खतरनाक नहीं होता, उतना छोटा खतरनाक होता है। कभी-कभी छोटी बात इतनी टेढ़ी होती है कि बड़ी बात उतनी टेढ़ी नहीं होती। अणु का विस्फोट कितना टेढ़ा होता है। दो-चार मन के पत्थर को फोड़ना उतना टेढ़ा नहीं है। एक शिल्पी हथौड़ा लेकर बैठता है और बड़े से बड़े पत्थर के टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। आप

उस शिल्पी से कहें—अणु को तोड़ो। हथौड़ा बेकार, छेनी बेकार और सब कुछ बेकार। जीवन में भी वह अणु का विस्फोट नहीं कर पाएगा।

हमारी यात्रा बहुत छोटी है। किन्तु जितनी छोटी, उतनी ही टेढ़ी, उतनी ही कठिन। हम यात्रा शुरू करें शक्तिकेन्द्र से और आगे बढ़ें। किन्तु हम पीछे के रास्ते से आगे बढ़ें, आगे के रास्ते से नहीं। जो सामने है उसी को न देखें। हम सुषुम्ना के मार्ग से, पीछे के मार्ग से आगे बढ़ें। हम सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर की ओर चलें। शक्तिकेन्द्र से चलें और तैजस केन्द्र में पहुंचें। तैजस केन्द्र आगे की ओर नहीं है। आगे तो उसके पत्ते, फल-फूल हो सकते हैं। किन्तु जो जड़ है, वह सारी की सारी सुषुम्ना में है। तैजस केन्द्र को आप नाभि ही न समझें। यह तो केवल ऊपरी भाग है, किन्तु जो मूल है, वह पीछे सुषुम्ना में है। हमारी सारी चढ़ाई, हमारा समूचा ऊर्ध्वारोहण उस सुषुम्ना के रास्ते से हो। तैजस केन्द्र तक जाकर हम आगे आनंदकेन्द्र पर पहुंचें। यह तीसरा मध्य विश्राम है। यहां से तालु पर पहुंचें, दर्शनकेन्द्र पर पहुंचें। दर्शनकेन्द्र तक हमारा ऊर्ध्वारोहण होता है तब साक्षात्कार की स्थिति बनती है। मंत्र का साक्षात्कार दर्शनकेन्द्र में होता है। यह साक्षात्कार का बिन्दु है। जब हम इस बिन्दु तक पहुंचते हैं तब कषाय क्षीण होते हैं, राग-द्वेष और मल क्षीण होते हैं। वास्तव में मंत्र के साक्षात्कार द्वारा आत्म-साक्षात्कार की घटना घटित होती है। भेद समाप्त हो जाता है। शब्द मिट जाता है। कोरा अर्थ रहता है। अर्थ के साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है। अर्थ और हम एक हो जाते हैं। उस स्थिति में जो ध्येय होता है, वह ध्येय समाप्त होकर ध्याता और ध्येय एक बन जाते हैं। उनमें सर्वथा अभेद घटित हो जाता है।

उससे आगे की स्थिति है—परावाक्, कोरा ज्ञान, विशुद्ध ज्ञान, कोरे चैतन्य का अनुभव। जब हम दर्शनकेन्द्र से आगे चलते हैं और ज्ञानकेन्द्र के शिखर तक पहुंचते हैं वहां शुद्ध चैतन्य के अनुभव की घटना घटित होती है। इन छोटी-छोटी घाटियों को पार करने में कितनी शक्ति, कितनी ऊर्जा, कितना श्रम और कितना समय चाहिए। उस शक्ति को प्राप्त करने के लिए 'णमो अरहंताणं' का आलम्बन लेना बहुत आवश्यक है। अकेला व्यक्ति आरोहण की यात्रा पर निकलता है और बीहड़ घाटियों से गुजरता है तब भयाक्रांत हो जाता है। किन्तु जब कोई साथी होता है तब वह

भयमुक्त होकर चलता है। भय की घटना जीवन में घटित होती रहती है। ध्यान में प्रवेश करने वाले अभय बनना चाहते हैं। किन्तु यह सचाई है कि जो व्यक्ति गहरे ध्यान में जाते हैं, उनके सामने भय की भयंकर स्थितियां आती हैं। ऐसे भय, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उन सारे भयों को सहन करना अकेले व्यक्ति की बात नहीं रहती। उसे कोई सहारा चाहिए, आलम्बन चाहिए। उसे कोई पीठ थपथपाने वाला चाहिए, आगे बढ़ाने वाला चाहिए, जिससे कि उन सारे खतरों को पार कर, भयों को पार कर वह आगे बढ़ सके।

अर्हत् के प्रति नमन, अर्हत् के प्रति हमारा समर्पण, एकीभाव, तादात्म्य जैसे-जैसे बढ़ता है, भय की बात समाप्त होती चली जाती है। भय तब होता है, जब हमें कोई आधार प्राप्त नहीं होता। निराधार व्यक्ति को भय होता है। आधार प्राप्त होने पर भय समाप्त हो जाता है। जिस व्यक्ति को व्यवहार में कोई आधार नहीं दिखता, वह सोचता है, बुढ़ापे में क्या होगा ? वीमारी में क्या होगा ? भविष्य में क्या होगा ? उसके मन में अनेक भय जाग जाते हैं। जिस व्यक्ति के परिवार होता है, बेटे-पोते होते हैं, वहुएं होती हैं, वह इतना भयाक्रांत नहीं होता, वह अभय होता है। वह सोचता है—बुढ़ापे में सेवा होगी, वीमारी में परिचर्या होगी, भविष्य में सब काम आएंगे। मन में भय कम हो जाता है। जब पास में धन नहीं होता है तब व्यक्ति सोचता है—बुढ़ापे में क्या खाऊंगा ? पास में धन होता है तब बुढ़ापे की चिन्ता नहीं सताती। जब व्यक्ति को दूसरे का आधार प्राप्त होता है तब भय नहीं होता। साधना के मार्ग में जब साधक अकेला होता है तब न जाने उसमें कितने भय पैदा हो जाते हैं। किन्तु जब वह 'णमो अरहंताणं' जैसे शक्तिशाली मंत्र का आधार लेकर चलता है तब उसके भय समाप्त हो जाते हैं। वह अनुभव करता है कि मैं अकेला नहीं हूं, मेरे साथ शक्तिशाली साथी है।

एक व्यक्ति साधक के पास आकर बोला—आप अकेले हैं। मैंने सोचा, कुछ देर आपका साथ दूं। आप अकेले में ऊब जाएंगे, आपके साथ रहूं। साधक ने कहा—मैं अकेला कहां था ? तुम आए और मैं अकेला हो गया। मैं अपने प्रभु के साथ था। मेरा प्रभु मेरा साथ दे रहा था। मेरा अर्हत्, मेरा भगवान् साथ था। तुम आए और मुझे अकेला कर दिया। जिस व्यक्ति को

अपना अर्हत् प्राप्त होता है, जिस व्यक्ति का अर्हत् के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है, एकता स्थापित हो जाती है, वह व्यक्ति आधारहीन नहीं होता। उसे ऐसा आधार मिल जाता है, जहां सारे भय समाप्त हो जाते हैं। भय तब तक होता है जब तक ज्ञान की अनुभूति नहीं होती; शुद्ध चेतना की अनुभूति नहीं होती। भय तब तक होता है, जब तक दर्शन की अनुभूति नहीं होती, अपना अनुभव नहीं होता। भय तब तक होता है जब तक मूर्च्छा नहीं टूटती, अपना आनन्द उपलब्ध नहीं होता। पदार्थ का आनन्द जब तक उपलब्ध होता है तब तक भय बना रहता है। भय तब तक होता है जब तक हमें अपनी शक्ति का भान नहीं होता, शक्ति पर विश्वास नहीं होता। अर्हत् का अर्थ है—अपना ज्ञान, अपना दर्शन अपना आनन्द और अपनी शक्ति। पराया कुछ भी नहीं, सब कुछ अपना। उस दुकानदार को हमेशा भय रहता है, जो उधार ली हुई धनराशि से अपना व्यापार चलाता है। जो अपनी धनराशि से अपना व्यापार चलाता है उसे कोई भय नहीं होता, कोई खतरा नहीं होता। अर्हत् अपने ज्ञान, दर्शन और शक्ति की चतुष्टयी का नाम है। जब अर्हत् की चेतना जाग जाती है फिर भय समाप्त हो जाता है। सर्वत्र अभय की चेतना जाग जाती है।

‘णमो अरहंताणं’ है अर्हत् के प्रति नमन, अर्हत् के प्रति समर्पण, अर्हत् के साथ तादात्म्य, अर्हत् के साथ एकता की अनुभूति। यह अनुभूति अभय पैदा करती है। उसका सहारा लेकर हम निर्विकल्प स्थिति में पहुंचते हैं, तब भी हमें कोई खतरा नहीं होता। लोग यह बहुत बड़ा खतरा मानते हैं कि जब निर्विकल्प स्थिति में जाते हैं तब सारी कल्पनाएं, सारे विकल्प, सारी योजनाएं छूट जाती हैं। बहुत बड़ा खतरा लगता है। शरीर छूट जाता है, शरीर के प्रति आसक्ति छूट जाती है, पदार्थ छूट जाता है। व्यवहार में लोग समझते हैं कि आदमी निकम्मा हो गया। अब यह हमारे काम का नहीं रहा। बहुत बड़ा भय लगता है, खतरा लगता है। किन्तु जिस व्यक्त को एक क्षण के लिए भी निर्विकल्प दशा या निर्विकल्प चेतना का अनुभव हो जाता है, फिर वह उस स्थिति से कभी मुड़ नहीं सकता। वहां पहुंचने वाला व्यक्ति यह अनुभव करता है—यह अपूर्व आनन्द कहां से बरस रहा है। आदमी को खाने से आनन्द मिलता है, रूप देखने से आनन्द मिलता है, अच्छा संगीत सुनने से आनन्द मिलता है, अच्छे स्पर्श से आनन्द मिलता है। जब

हमारी इन्द्रियों के पांचों विषय अनुकूल होते हैं तब सुख का, आनन्द का अनुभव होता है, किन्तु जहां न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है और न स्पर्श है, वहां भी अनुपम आनन्द का अनुभव होता है, अपूर्व सुख मिलता है। प्रशंसा मिलती है, आदमी सुख का अनुभव करता है। उसे तृप्ति मिलती है। पर कोई प्रशंसा नहीं। कोई विरुदावली नहीं, फिर भी आनन्द की अनुभूति —यह है वास्तविक स्थिति। जब साधक दर्शनकेन्द्र के जागरण की स्थिति में पहुंच जाता है, जब उसके तेजोलेश्या के स्पंदन जाग जाते हैं तब एक दिव्य आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

शिविर में हमने कुछेक प्रयोग कराए। जिन व्यक्तियों ने तेजोलेश्या के स्पंदनों को पकड़ लिया, वे इससे पूर्व आधा घंटा भी नहीं बैठ पाते थे, अब छह-छह घंटा बैठने में भी उन्हें कोई दिक्कत नहीं होती। कभी-कभी ऐसी स्थिति बनती है कि उन्हें पुनः मूल की स्थिति में लाने के लिए दूसरा प्रयोग कराना पड़ता है। जब ये स्पंदन जाग जाते हैं, बाहर के पदार्थ और पदार्थ से होने वाली सुख की सीमा समाप्त हो जाती है। आन्तरिक घटना घटित होती है और आन्तरिक परिणामों के द्वारा ऐसी विचित्र अनुभूति जागती है, जिसकी पदार्थ से होने वाले सुख से कोई तुलना नहीं की जा सकती। यह आन्तरिक अनुभव, अन्दर से टपकने वाला अनुभव, यह भीतर से झरने वाला सुख का निर्झर ऐसा प्रवाहित होता है कि उसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। वाणी वहां मौन हो जाती है, वह केवल अनुभव का विषय है। अनुभव की बात सूक्ष्म होती है। जब वह वाक् में आती है तब स्थूल बन जाती है। साधना करने वाला स्थूल से चलता है और सूक्ष्म तक पहुंच जाता है। वह शब्द से चलता है और अनुभव तक पहुंच जाता है। जिस व्यक्ति ने अनुभव कर लिया, वह अनुभव से चलता है और शब्द तक पहुंचता है। इन दोनों में यह अन्तर रहता है। हमारी वाणी की उत्पत्ति का क्रम यह है—पहले ज्ञान बनता है, ज्ञान में स्पंदन बनता है, फिर वह ज्ञान में प्रकट होता है। जो लब्धि है वह उपयोग में आती है। उससे आगे वह अव्यक्त वाणी में जाती है और फिर व्यक्त वाणी में उतरती है। यह है वाणी की उत्पत्ति का क्रम। साधना का क्रम उससे उल्टा है। साधक पहले स्थूल वाणी में जाता है फिर वह अन्तर् वाणी में जाता है। वह जल्प से अन्तर्जल्प में जाता है। वहां से ज्ञान के उपयोग में जाता है और वहां से मूल ज्ञान के

स्रोत तक पहुंचता है। एक क्रम है सूक्ष्म से सूक्ष्म की ओर जाने का, अन्दर से बाहर की ओर जाने का। एक क्रम है स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का, बाहर से भीतर की ओर जाने का। यह साधना का क्रम है। यह अन्तर्यात्रा का क्रम है। अन्तर्यात्रा के रहस्य को समझ लेने पर ही यह सम्भावना की जा सकती है कि 'णमो अरहंताणं' से कषाय क्षीण हो सकते हैं, संस्कार क्षीण हो सकते हैं, शुद्ध चेतना का अनुभव हो सकता है और शुद्ध चेतना की उच्चतम भूमिका में हमारा आरोहण हो सकता है।

५. महामंत्र

- यह इसलिए महामंत्र है कि
 १. इससे अधोमुखी बुद्धि ऊर्ध्वमुखी होती है।
 २. तृप्ति नहीं, इच्छा का अभाव होता है।
 ३. सुख-दुःख की कल्पना में परिवर्तन होता है।
 ४. मार्ग उपलब्ध होता है।
 ५. चेतना, आनन्द और शक्ति का समन्वित विकास होता है।

•

हम कुछ दिनों से एक महासागर में अवगाहन कर रहे हैं, उसमें डुबकियां ले रहे हैं। यह सागर ही नहीं महासागर है। कितनी ही डुबकियां लें, कितना ही अवगाहन करें, इसका आर-पार पाना बहुत ही कठिन है। इसकी गहराई को मापना असंभव है। इसकी गहराई समूचे श्रुतसागर की गहराई है। कहा जाता है—नमस्कार महामंत्र चौदह पूर्वों का सार है। विश्व की सारी शाब्दिक विशिष्टता, ज्ञानराशि चौदह पूर्वों में समा जाती है। इतने बड़े समुद्र का अवगाहन करना कोई बड़ी बात नहीं है। इसलिए इस महासागर को महामंत्र कहा जाता है। यह मंत्र ही नहीं, महामंत्र है। यह महामंत्र क्यों है, इसे समझना है। नमस्कार मंत्र महामंत्र इसलिए है कि यह आत्मा का जागरण करता है। हमारी अध्यात्म यात्रा इससे संपन्न होती है। यह किसी कामनापूर्ति का मंत्र नहीं है। कामनापूर्ति के अनेक प्रकार के मंत्र होते हैं, जैसे—सरस्वती मंत्र, लक्ष्मी मंत्र, रोग निवारण मंत्र, सर्पदंश मुक्ति मंत्र आदि। जिस प्रकार बीमारियों के लिए औषधियों का निर्माण हुआ, वैसे ही रोग निवारण के लिए मंत्रों की संरचना हुई। जितनी बीमारियां उतनी

ही औषधियां। जितने प्रकार के कामना के स्रोत हैं, उतने ही मंत्र हैं। नमस्कार महामंत्र कामनापूर्ति का मंत्र नहीं है। इच्छापूर्ति का मंत्र नहीं है, किन्तु यह वह मंत्र है, जो कामना को समाप्त कर सकता है, इच्छा को मिटा सकता है। बहुत बड़ा अन्तर है। एक मंत्र होता है, कामना की पूर्ति करने वाला और एक मंत्र होता है, कामना मिटाने वाला। एक मंत्र होता है, इच्छा की पूर्ति करने वाला और एक मंत्र होता है, इच्छा को मिटाने वाला। दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। कामनापूर्ति और इच्छापूर्ति का स्तर बहुत नीचे रह जाता है। जब मनुष्य की ऊर्ध्व चेतना जागृत होती है तब उसे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि संसार की सबसे बड़ी उपलब्धि वही है, जिससे कामना और इच्छा का अभाव हो सके। कामना की पूर्ति और कामना का अभाव—दो बातें हैं। दोनों में बहुत बड़ी दूरी है।

मुझे एक कहानी याद आ रही है। बहुत ही मार्मिक है। एक व्यक्ति संन्यासी के पास जाकर बोला—‘बाबा! बहुत गरीब हूं, कुछ दो।’

संन्यासी ने कहा—‘मैं अकिंचन हूं, तुम्हें क्या दे सकता हूं? मेरे पास अब कुछ भी नहीं है।’

लोग उन्हीं से मांगते हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है। लोग उन्हीं के पीछे पड़ते हैं जो अकिंचन होते हैं। दुनिया की प्रकृति ही ऐसी है कि मनुष्य उनके पास नहीं जाते जिनके पास होता है, उनके पास जाते हैं जिनके पास नहीं होता।

संन्यासी ने बहुत नकारा, पर वह नहीं माना। तब बाबा ने कहा—‘जाओ नदी के किनारे एक पारस का टुकड़ा है, उसे ले जाओ। मैंने उसे फेंका है। उस टुकड़े से लोहा सोना बनता है।’

वह दौड़ा-दौड़ा नदी के किनारे गया। पारस का टुकड़ा उठा लाया। बाबा को नमस्कार कर घर की ओर चला। सौ कदम गया होगा कि मन में विकल्प उठा और वह उन्हीं पैरों संन्यासी के पास आकर बोला—‘बाबा ! यह लो तुम्हारा पारस। मुझे नहीं चाहिए।’ संन्यासी ने पूछा—‘क्यों?’ यह कैसा परिवर्तन ! जो धन के लिए ललचा रहा था, वह पारस जैसे महाधन को ठुकरा रहा है, धन के महास्रोत को ठुकरा रहा है। क्या हो गया दो-चार क्षणों में ही ! उसने कहा—‘बाबा ! मुझे वह चाहिए, जिसे पाकर तुमने पारस को ठुकराया है। पारस से भी वह कीमती है, वह मुझे

दो।'

जब व्यक्ति में अन्दर की चेतना जाग जाती है तब वह कामनापूर्ति के पीछे नहीं दौड़ता, तब वह इच्छापूर्ति का प्रयत्न नहीं करता। वह उस बात के पीछे दौड़ता है, वह उस मंत्र की खोज करता है जो कामना को काट दे, उसके स्रोत को ही सुखा दे। उसे वह मंत्र चाहिए जो इच्छा का अभाव पैदा कर दे, इच्छा के स्रोत को नष्ट कर दे। नमस्कार महामंत्र इसीलिए है कि उससे इच्छा की पूर्ति नहीं होती, किन्तु इच्छा का स्रोत ही सूख जाता है। जहां सारी इच्छाएं समाप्त, सारी कामनाएं समाप्त, जहां व्यक्ति निरीह और निष्काम बन जाता है और कामना के धरातल से ऊपर उठ जाता है, वहां उसका अर्हत् स्वरूप जागता है। यही नमस्कार महामंत्र का प्रयोजन है और इसीलिए यह केवल मंत्र ही नहीं महामंत्र है।

नमस्कार महामंत्र से भी ऐहिक कामनाएं पूरी होती हैं, किन्तु यह उसका मूल उद्देश्य नहीं है, मूल प्रयोजन नहीं है। उसकी संरचना केवल अध्यात्म जागरण के लिए हुई है, कामनाओं की समाप्ति के लिए हुई है। यह एक तथ्य है कि जहां बड़ी उपलब्धि होती है, वहां आनुषंगिक रूप में अनेक छोटी उपलब्धियां भी अपने आप हो जाती हैं। छोटी उपलब्धि में बड़ी उपलब्धि नहीं होती, किन्तु बड़ी उपलब्धि में छोटी उपलब्धि सहज हो जाती है। कोई व्यक्ति सरस्वती के मंत्र की आराधना करता है तो उसके ज्ञान बढ़ेगा। कोई व्यक्ति लक्ष्मी के मंत्र की आराधना करता है तो उसके धन बढ़ेगा। किन्तु अध्यात्म का जागरण या आत्मा का उन्नयन नहीं होगा, क्योंकि छोटी उपलब्धि के साथ बड़ी उपलब्धि नहीं मिलती। जो व्यक्ति बड़ी उपलब्धि के लिए चलता है, रास्ते में उसे छोटी-छोटी अनेक उपलब्धियां प्राप्त हो जाती हैं।

राजा के चार रानियां थीं। राजा विदेश गया हुआ था। जब उसके लौटने का समय हुआ तब रानियों ने विदेश से कुछ वस्तुएं मंगाईं। एक रानी ने हार, दूसरी ने कंगन, तीसरी ने नूपुर मंगाया। पत्र लिख दिए। चौथी ने अपने पत्र में लिखा—'मुझे आपके सिवाय कुछ नहीं चाहिए।' राजा आया। तीनों रानियों को अपनी-अपनी वस्तुएं दीं और चौथी रानी को सब कुछ दे दिया। उसने कहा—किसी को हार की, किसी को कंगन की और किसी को नूपुर की जरूरत थी। मैंने उनकी जरूरत पूरी कर दी।

चौथी रानी को मेरी जरूरत थी। उसे मैं मिल गया। साथ-साथ मेरा जो कुछ है वह उसे सहज मिल गया है।

व्यक्ति बहुत छोटी-छोटी मांगें करता है। उसे छोटा मिलता है। किन्तु जब मांग बहुत बड़ी होती है तो छोटी मांगे स्वयं मिल जाती हैं।

यह नमस्कार मंत्र महामंत्र इसलिए है कि इसके साथ कोई मांग जुड़ी हुई नहीं है। उसके पीछे कोई कामना नहीं है। इसके साथ केवल जुड़ा हुआ है—आत्मा का जागरण, चैतन्य का जागरण, आत्मा के स्वरूप का उद्घाटन और आत्मा के आवरणों का विलय। जब इतनी बड़ी मांग होती है, जब आत्म साक्षात्कार और परमात्मा बनने की मांग पूरी होती है तब सहवर्ती अनेक उपलब्धियां स्वयं आ जाती हैं। जिस व्यक्ति को परमात्मा उपलब्ध हो गया, जिस व्यक्ति को आत्म-जागरण उपलब्ध हो गया, उसे सब कुछ उपलब्ध हो गया। कुछ भी शेष नहीं रहा।

नमस्कार महामंत्र के साथ कोई छोटी मांग जुड़ी हुई नहीं है, उसके साथ जुड़ा हुआ है केवल चैतन्य का जागरण। सोया हुआ चैतन्य जाग जाए। सोया हुआ प्रभु, जो अपने भीतर है, वह जाग जाए। अपना परमात्मा जाग जाए। जहां इतनी बड़ी स्थिति होती है वहां सचमुच वह मंत्र महामंत्र बन जाता है।

नमस्कार महामंत्र के पांचों पदों में पांच आत्माएं जुड़ी हुई हैं। कोई अल्प शक्ति जुड़ी हुई नहीं है। विश्व की पांच महाशक्तियां इसके साथ जुड़ी हुई हैं। केवल आत्मा और केवल परमात्मा इसके साथ जुड़ा हुआ है। अर्हत् परमात्मा है, सिद्ध परमात्मा है। आचार की गंगा में अवगाहन करने वाले और ऐसे नंदनवन में रहने वाले जिनके आसपास सौरभ फूटता है, वे परम आत्मा का जागरण करने वाले आचार्य इसके साथ जुड़े हुए हैं। वे उपाध्याय इसके साथ जुड़े हुए हैं जो समग्र श्रुतराशि का अवगाहन कर ज्ञान का आलोक विकीर्ण करते हैं। इसके साथ जुड़े हुए हैं वे साधु या साधक जो आत्मा के समस्त आवरणों को दूर कर, परमात्मा से साक्षात्कार करने का सतत उपक्रम कर रहे हैं। विश्व की सारी पवित्र आत्माएं किसी संप्रदाय की नहीं, किसी धर्म विशेष की नहीं, किसी जाति की नहीं, सबकी हैं, वे सब इसके साथ जुड़ी हुई हैं।

नमस्कार के महामंत्र होने का दूसरा हेतु यह है कि यह एक मार्ग है।

‘णमो अरहंताणं’—अर्हत् मार्ग होता है।

मैं दूसरा प्रयोग करवाना चाहता हूँ कि अर्हत् का ध्यान पैरों पर क्यों किया जाए ? लोगों को लगेगा कि अर्हत् का स्थान तो सिर है, पैरों पर उनका ध्यान क्यों ? यह प्रश्न है। इसका मुझे ज्ञान था। मेरे पास इसका समाधान भी है। मैंने योग साधना से जो कुछ अनुभव किया, आज के वैज्ञानिक अनुसंधानों को पढ़ा-सुना। एक्यूंपंक्वर चिकित्सा पद्धति में खोजे गये सात सौ चैतन्य केन्द्रों के विषय में पढ़ा, योग तथा आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट चैतन्य केन्द्रों का अनुभव किया और आज के शरीरशास्त्रियों द्वारा खोजे गए ग्रन्थियों का सिद्धान्त और स्वरूप देखा तो ज्ञात हुआ कि शरीर का कण-कण पवित्र है। पैर का अंगूठा भी उतना ही पवित्र है जितना पवित्र शरीर का शिखर है। कोई अन्तर नहीं है। जब हम कहते हैं—हिमालय बहुत बड़ा है तो उसकी तलहटी भी बड़ी है और शिखर भी बड़ा है। गंगा यदि पवित्र है तो उसका प्रत्येक कण पवित्र है। उसकी प्रत्येक बूंद पवित्र है। उसकी प्रत्येक धारा पवित्र है। गंगा यदि पवित्र है तो जहां से वह उत्पन्न होती है वह भी पवित्र है और जहां प्रवाहित होती है वह भी पवित्र है। हमारे शरीर का कण-कण पवित्र है। सिर का कोई भाग अपवित्र नहीं है। सारा पवित्र है। हमारे सिर में यदि चैतन्य केन्द्र हैं, हमारे शरीर में पिच्यूटरी और पिनियल ग्लैण्ड्स हैं तो हमारे हाथों-पैरों में भी वैसा ही है। जो ग्रन्थियां सिर में हैं वे हाथों-पैरों में भी हैं। पैरों में अनेक चैतन्य केन्द्र हैं। प्रचीन काल में यह प्रचलित था कि यदि ध्यानस्थ व्यक्ति को जगाना है तो उसके पैर के अंगूठे को बीच से दबाना होता। वह समाधिस्थ व्यक्ति जाग जाता। उसकी समाधि टूट जाती। यह उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त है। इसका रहस्य ज्ञात नहीं हो रहा था। किन्तु एक्यूंपंक्वर पद्धति के अध्ययन से यह रहस्य स्पष्ट हो गया। पिच्यूटरी का जो सेंटर है, उस जैसा केन्द्र भी अंगूठे में है। यह रहस्य बहुत लाभदायी हुआ।

जब ध्यान की गहराई होती है, व्यक्ति दर्शनकेन्द्र की गहराइयों में चला जाता है और समाधिस्थ हो जाता है। दर्शनकेन्द्र समाधि का बहुत बड़ा केन्द्र है। इसकी अवस्थिति भृकुटियों के बीच है। जो व्यक्ति इस केन्द्र में समाधिस्थ हो जाता है उसके जागरण का उपाय यह है कि उसके पैर के अंगूठे को दबाना। वह दबाव दर्शनकेन्द्र तक पहुंच जाएगा और उस व्यक्ति

की समाधि टूट जाएगी। हमारे पैर भी उतने ही पवित्र हैं जितना पवित्र है हमारा सिर। हम पैरों को अपवित्र क्यों मानें ? हमारी गति का माध्यम क्या है ? गति का एकमात्र माध्यम है पैरों के पंजे। यदि पंजे नहीं टिकते हैं तो गति नहीं हो सकती। अर्हत् की आराधना पैरों पर भी की जाती है। जिस प्रकार पैर गति देने वाले हैं उसी प्रकार अर्हत् समूची अध्यात्मयात्रा को गति देने वाले हैं। अर्हत् मार्ग हैं। अर्हत् पैर हैं। अर्हत् गति हैं और गति को बढ़ाने वाले हैं।

नमस्कार महामंत्र में समूचा मार्ग समाया हुआ है। मोक्ष मार्ग के चार चरण हैं—सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप। अर्हत् इस चतुष्टयी के समन्वित रूप हैं। वे मार्ग हैं। अर्हत् का स्वरूप है—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र अर्थात् अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति। चारित्र और आनन्द एक हैं। साधना-काल में जो चारित्र होता है वह सिद्धि-काल में आनन्द बन जाता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। यही है अर्हत् का स्वरूप और यही है मोक्ष का मार्ग। इस नमस्कार महामंत्र में मार्ग का रहस्य छिपा हुआ है। हमारी अध्यात्म-यात्रा का समूचा मार्ग छिपा हुआ है। यह मंत्र मार्गदाता है, इसलिए यह महामंत्र की कोटि में आता है।

नमस्कार मंत्र का महामंत्र होने का तीसरा हेतु है—दुःखमुक्ति का सामर्थ्य। आदमी का सारा पुरुषार्थ दुःख को मिटाने और सुख को पाने के लिए होता है। जितना पुरुषार्थ, जितनी प्रवृत्ति, जितनी चेष्टा और जितनी सक्रियता है, वह दो बातों से जुड़ी हुई है। पहली बात है दुःख को मिटाना और दूसरी बात है सुख प्राप्त करना।

कल-कारखाने चलाने वाले से पूछा जाता है कि इतना श्रम क्यों ? वह कहता है—दुःख कट जाए। अपना दुःख भी कटे और दुनिया का दुःख भी कटे। कृषक को पूछा जाता है—खेती क्यों करते हो ? वह कहता है—भूख का दुःख मिटे। लोगों को अनाज मिले। उनका भी दुःख कट जाए। प्रत्येक प्रवृत्ति के पीछे ये दो हेतु होते हैं।—दुःख का उच्छेद और सुख की उपलब्धि, दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति। किन्तु नमस्कार महामंत्र हमारी दुःख-सुख की सारी कल्पना को ही बदल देता है। जब हम इस महामंत्र के परिपार्श्व में जाते हैं, तब मनःस्थिति कुछ और ही होती है।

सारा दर्शन बदल जाता है, सारी अवधारणा बदल जाती है। ऐसा लगने लगता है कि जिसको हमने सुख मान रखा था, जिसको हमने दुःख मान रखा था, वह सुख न सुख है और वह दुःख न दुःख है। सुख-दुःख की भ्रान्ति मिट जाती है, नींद टूट जाती है और आदमी जाग जाता है। स्वप्न समाप्त हो जाता है। स्वप्न का दर्शन जागने पर बदल जाता है। जागने वाला व्यक्ति स्वप्न की अवधारणा को यथार्थ नहीं मानता। स्वप्न की अवधारणा जागने की अवधारणा से भिन्न होती है। सुख-दुःख की कल्पना में परिवर्तन हो जाता है।

खुजलाने को कष्टप्रद माना जाता है। खुजलाना कितना आनन्द देने वाला है, यह उस व्यक्ति से पूछें जो खुजली के रोग से पीड़ित है। बुद्धि का विपर्यय, मति का विपर्यय और चिंतन का इतना विपर्यय हो जाता है कि व्यक्ति जो नहीं है उसे मान लेता है, जो है उसे नहीं मानता। ठीक है, आदमी ने पदार्थ में सुख मान रखा है। खाने में सुख होता है, पीने में सुख होता है, वस्तुओं के भोग में सुख होता है। भूख लगी है और यदि खाना नहीं मिलता है तो दुःख होता है। प्यास लगी है और यदि पानी नहीं मिलता है तो दुःख होता है। जो चाहिए वह नहीं मिलता है तो दुःख होता है। मलेरिया ज्वर में कुनैन नहीं मिलता है तो दुःख होता है। क्या कुनैन की गोलियां खाना सुख है ? कोई सुख नहीं है। हम गहरे में उतर कर देखें। ज्ञात होगा कि भूख स्वयं एक बीमारी है। संस्कृत में इसका नाम है—जठराग्नि जा पीड़ा, जठर की अग्नि से होने वाली पीड़ा। भला बीमारी भी कभी सुख होती है ? तो क्या बीमारी के लिए कोई दवा लेना सुख की बात है ? खाने का अर्थ है उस जठर की अग्नि से उत्पन्न पीड़ा को बुझाना। खाना भी बीमारी है। हमारी मान्यता ऐसी हो गई है कि यदा-कदा होने वाली पीड़ा को हम बीमारी मान लेते हैं और रोज होने वाली पीड़ा को बीमारी नहीं मानते। और रोज होने वाली पीड़ा को बीमारी नहीं, सुख मानते हैं। भूख बीमारी है और खाना भी बीमारी है।

एक बात है। बुरी चीज छूटने पर आदमी को सुख ही होता है, ऐसा नहीं है। बुरी चीज छूटने पर आदमी को दुःख भी होता है। पेट में मल संचित है। मल विजातीय द्रव्य है। जब वह निकाला जाता है तो एक बार आदमी कमजोरी और थकान का अनुभव करता है। खराबी का निष्कासन

हो रहा है, पर आदमी कमजोर होता जा रहा है। इसका कारण स्पष्ट है। जिसको वर्षों से पाल रखा है, उससे छुटकारा पाना कोई नहीं चाहता। संस्कृत में एक नीतिवाक्य है—‘विषवृक्षोऽपि संवर्ध् स्वयं छेतुं न साम्प्रतम्’—अपने हाथों से बढ़े हुए विष-वृक्ष को काटना उचित नहीं है। यह नीतिसूत्र इसीलिए चला होगा। आदमी दुःख के वृक्ष को पालता चला जा रहा है। उसे उखाड़ फेंकने की बात वह सोचता ही नहीं। कितना विपर्यय ! कितना आश्चर्य ! हम बीमारी की दवा लेते हैं और उसे सुख मान लेते हैं। किन्तु यथार्थ में सुख की चेतना तब जागती है जब आदमी नमस्कार मंत्र की आराधना में लगता है। वह बाहर की यात्रा से विरत होकर अन्तर् की यात्रा प्रारम्भ करता है। तब सुख की चेतना जागृत होती है। इस जागरण में नए-नए अनुभव होने लगते हैं जो पहले कभी नहीं हुए थे। उस समय अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है। उसे लोकोत्तर सुख की अनुभूति होती है जो पदार्थ से कभी नहीं हो सकती।

जब हम नमस्कार महामंत्र की आराधना करते समय अन्तःकरण की गहराइयों में उतरते हैं और उसको साक्षात् करते हैं तब अलौकिक आनन्द की रश्मि फूट पड़ती है, सारा मार्ग आलोक से भर जाता है और तब सुख-दुःख की सारी धारणा बदल जाती है। मनुष्य सदा यह मानता रहा है कि पदार्थ से ही इन्द्रियों को और मन को सुख मिलता है। यह भ्रान्ति टूट जाती है। यह मूर्च्छा समाप्त हो जाती है। उसे भान हो जाता है कि पदार्थ से ही सुख नहीं मिलता, अपने अन्तःकरण से भी सुख मिलता है। पदार्थ से मिलने वाला कोई भी सुख ऐसा नहीं है जिसके साथ दुःख जुड़ा हुआ न हो। किन्तु इस आत्मानुभव के साथ, आत्मा से फूटने वाली सुख-रश्मियों के साथ कोई दुःख जुड़ा हुआ नहीं है। यह केवल सुख है, विशुद्ध और परिपूर्ण सुख है। इसमें कोई मिश्रण नहीं है।

आप अनुभव करें कि जब उत्तेजना आती है तब गाली देने में कितना आनन्द आता है। ऐसा लगता है मानो स्वर्ग का राज्य ही लूट लिया गाली देकर। किन्तु जब उत्तेजना का पारा उतरता है तब मन पश्चात्ताप से भर जाता है, ग्लानि से भर जाता है। इन्द्रिय-संवेदनाओं से होने वाली घटनाओं के प्रति प्रारंभ में हमारा मोह होता है और हम उन्हें कर डालते हैं। उनके घटित होने पर मन में पछतावा होता है और प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है

कि ऐसा नहीं करता तो अच्छा होता। करते समय सुख अनुभव होता है और करने के बाद दुःख होता है ! यह ऐसा सुख है जिसके साथ अनुताप जुड़ा हुआ है। पुद्गल से प्राप्त होने वाला ऐसा एक भी सुख नहीं है जिसके साथ दुःख की परम्परा जुड़ी हुई न हो, सन्ताप की परम्परा संलग्न न हो।

ध्यान करने वाले किसी भी व्यक्ति ने यह नहीं कहा कि अच्छा होता यदि मैं ध्यान नहीं करता। इसका कारण है कि जो सुखानुभूति ध्यान से प्रसूत होती है, वह आनन्द देती है। ध्यान अध्यात्म की यात्रा है। इसमें दूसरे की कसौटी, दूसरे का मानदंड और दूसरे का तराजू काम नहीं देता। अपनी कसौटी, अपना मानदंड और अपनी तुला ही इसमें काम देती है। जहां अपना अनुभव जाग जाता है, अपनी चेतना जाग जाती है वहां व्यक्ति स्वयं में कसौटी होता है, स्वयं ही तुला होता है। यह स्थिति प्राप्त होते ही पुरानी धारणाएं बदल जाती हैं, सारे मानदंड बदल जाते हैं। तब व्यक्ति अपने आपको खाली करने में लग जाता है। खाली होने की यह अवस्था ही निर्विकल्प अवस्था है। जब हम मंत्र की साधना के द्वारा, शब्द के सहारे विकल्प से चलते-चलते निर्विकल्प स्थिति तक पहुंचते हैं, उस समय चैतन्य का नया उन्मेष जागता है। इसीलिए नमस्कार मंत्र महामंत्र है।

नमस्कार मंत्र के महामंत्र होने का चौथा हेतु है—इससे वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण, बुद्धि का ऊर्ध्वारोहण होता है। हमारी शरीर-रचना में जो बुद्धि का स्थान है, वृत्तियों का स्थान है, उनके केन्द्र हैं, वे सारे नीचे की ओर मुंह किए हुए हैं। वृत्तियां नीचे की ओर, बुद्धि नीचे की ओर, इसीलिए आदमी का चिंतन नीचे की ओर जाता है। नीचे हमारा कामना-केन्द्र है, हमारी सारी बुद्धि काम-केन्द्र की ओर जाती है। हमारी चेतना का पूरा प्रवाह नीचे की ओर जाता है। जब हम नमस्कार महामंत्र की आराधना करते हैं और शक्ति केन्द्र से प्रारम्भ कर, सुषुम्ना के मार्ग से ज्ञानकेन्द्र तक श्वास को ले जाते हैं, तो इसका अर्थ है कि हम नीचे से ऊपर आरोहण कर रहे हैं। तलहटी से शिखर की ओर चढ़ रहे हैं। उस स्थिति में वृत्तियों का मुंह बदल जाता है। वे ऊर्ध्वमुखी हो जाती हैं। बुद्धि जो नीचे की ओर मुंह कर लटक रही थी, वह भी ऊपर की ओर मुंह कर लेती है। हमारी सारी वासनाएं बुद्धि और वृत्तियों के औंधे मुंह का सहारा पाकर पनप रही थीं। जब बुद्धि का मुंह बदल गया, वृत्तियों का मुंह बदल गया, तब बेचारी

कामनाएं, वासनाएं सूखने लग जाती हैं और चेतना का ऊर्ध्वरोहण प्रारम्भ हो जाता है।

नमस्कार मंत्र का महामंत्र होने का हेतु है—वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण, बुद्धि का ऊर्ध्वीकरण। मंत्र का एक-एक शब्द आत्म-भावना का ऊर्ध्वीकरण करता है।

मैंने चार हेतु प्रस्तुत किए। इनके परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि यह नमस्कार मंत्र यथार्थ में महामंत्र है।

६. आध्यात्मिक चिकित्सा [१]

- मंत्रशास्त्रीय दृष्टिकोण से जिसका वीर्य प्रकट हो जाए वह महामंत्र ।
- शक्तिकेन्द्र आदि चैतन्यकेन्द्रों में मंत्र और प्राणशक्ति की एकता होती है । वहीं वीर्य प्रकट होता है ।
- वीर्यवान् मंत्र ही संकल्पशक्ति का विकास है ।
- प्रेक्षाध्यान के मूल तत्त्व—
- भावक्रिया—मन को जागरूक बनाने का अभ्यास ।
- कायोत्सर्ग—शिथिलीकरण का अभ्यास ।
- भावना—संकल्पशक्ति के विकास का अभ्यास ।
- अनुप्रेक्षा—मूर्च्छा तोड़ने का अभ्यास ।

•

नमस्कार मंत्र महामंत्र है, यह समझने का हमने प्रयत्न किया आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, उसकी स्वरूपबद्ध विशेषताओं से और भावों की विशेषताओं से । मंत्र-साधना की दृष्टि से भी यह महामंत्र है । मंत्र-साधना की दृष्टि से महामंत्र वह होता है जिस मंत्र का वीर्य जागृत हो जाता है । जिस मंत्र का वीर्य जागृत नहीं होता वह महामंत्र नहीं होता । विश्व के कण-कण में जो घटित हो रहा है वह सारा वीर्य के द्वारा घटित हो रहा है । एक भी अणु वीर्य-शून्य नहीं है । शक्ति का एकछत्र साम्राज्य है । चेतन में शक्ति है तो अचेतन में भी शक्ति है । किन्तु जितनी शक्ति चेतन या पदार्थ में होती है वह पूरी की पूरी जागृत नहीं होती । शक्ति का बहुत बड़ा भाग, सत्तर-अस्सी या नब्बे प्रतिशत भाग सोया ही रहता है । केवल दस प्रतिशत या इम्मै भी

न्यून भाग ही जागृत रहता है। जब मंत्र की पूरी शक्ति जाग जाती है, उसका वीर्य जागृत हो जाता है तब मंत्र 'महामंत्र बन जाता है। महामंत्र तब बनता है जब वीर्य जागृत हो और वीर्य जागृत तब होता है जब प्राण और मंत्र की एकता स्थापित हो। शक्ति केन्द्र से ज्ञान के चैतन्य केन्द्रों में जब शब्द की धारा, भावना की धारा प्रवाहित होती है, मंत्र और प्राण एकात्मक बन जाते हैं, उनकी एकता स्थापित हो जाती है तब मंत्र में वीर्य प्रकट होता है। वीर्य के द्वारा ही संकल्पशक्ति का विकास होता है। हमारे जीवन की सफलता में संकल्पशक्ति का बहुत बड़ा योगदान है। संकल्पशक्ति के अभाव में कोई कार्य सफल नहीं होता। आदमी सुबह संकल्प करता है और सांझ को वह टूट जाता है। संभवतः घंटा बाद ही टूट जाए। दूसरा विचार आते ही संकल्प बदल जाता है। एक आदमी ने दूसरे आदमी की कटुवाणी को सुना और सहन कर लिया। मौन रहा। दस मिनट बाद किसी ने आकर कहा— क्या तुम मिट्टी के बने हो ? उसने इतनी कटु बात कही और तुम सुनते रहे ! मुंह में जबान नहीं थी ? इतना सुनते ही उसकी भावना बदल गई। सहन और क्षमा करने का भाव बदल गया। उसने सोचा—'उसने एक बात कही, तो मेरा पुरुषार्थ इसी में है कि मैं उसे दस बातें सुनाऊं । लोग भी मुझे लौह-पुरुष कहेंगे। मिट्टी का पुतला थोड़े ही हूँ कि सब कुछ सहता चलूँ।' ये विचार उसको संकल्प से विचलित कर देते हैं। संकल्प क्यों टूटता है ? एक आचार्य ने बहुत सुन्दर बात कही है :

अनिरुद्धाक्षसन्तानाः, अजितोग्रपरीषहा :।

अव्यक्तचित्तचापल्याः, प्रखलन्त्यात्मनिश्चये।।

—'जिस व्यक्ति ने अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित नहीं किया, जिस व्यक्ति ने कठिनाइयों को झेलने की क्षमता प्राप्त नहीं की और जिस व्यक्ति ने चित्त की चपलता को नहीं छोड़ा, वह व्यक्ति अपने संकल्प से खलित हो जाता है।'

आचार्य ने संकल्प टूटने के तीन कारणों का उल्लेख किया—

- (१) इन्द्रियों की अनियंत्रित वृत्ति, (२) कठिनाइयों को झेलने की अक्षमता, (३) चित्त की चंचलता।

मनुष्य इन्द्रियों का दास होता है। इन्द्रियों के वशीभूत होकर वह नहीं चाहने पर भी अनेक कार्य कर बैठता है। उत्तराध्ययन सूत्र का एक प्रसिद्ध

कथानक है। राजा बहुत बीमार हो गया। वैद्य ने चिकित्सा की। राजा नीरोग हो गया। जाते-जाते वैद्य ने कहा—‘राजन् ! तुम्हारा रोग ठीक हो गया। अब एक बात का परहेज रखना, आम कभी मत खाना। जब तक तुम आम नहीं खाओगे, यह बीमारी नहीं होगी। जिस दिन तुम आम खा लोगे, फिर बीमारी से आक्रान्त हो जाओगे। फिर चिकित्सा नहीं हो सकेगी।’ राजा ने कहा—ठीक है, आम नहीं खाऊंगा।

एक बार राजा अपने ही आम के बगीचे में घूम रहा था। आम का मौसम था। वृक्ष फलों से लदे थे। राजा ने एक आम्र-वृक्ष के नीचे विश्राम किया। मंत्री ने रोका, पर राजा नहीं माना। हवा चली। एक पका आम राजा की गोद में आ गिरा। राजा ने उसे उठाया, सूंघा। मंत्री से बोला—‘कितना सुन्दर और सुगन्धित आम है।’ मंत्री ने कहा—‘महाराज ! वैद्य की शिक्षा को याद करें। आम सूंघना भी मना है और खाना भी मना है।’ राजा ने कहा—‘वैद्य तो पागल होते हैं। एक आम सूंघने या चूसने में हानि भी क्या है ?’ इतना कहकर राजा आम चूसने लगा और उसके मीठे रस में तल्लीन हो गया। मंत्री ने रोकना चाहा, पर व्यर्थ। आम खाने से जो परिणाम होना था, वही हुआ। राजा मर गया।

जब इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता तब हजार बार निश्चय कर लेने पर भी संकल्प टूट नहीं होता। वह टूट जाता है। यह पहली बात है।

दूसरी बात यह है कि जो कठिनाइयां नहीं झेल सकता, उसका संकल्प नहीं चल सकता। इस दुनिया में कोई आए और उसे कठिनाइयों से न गुजरना पड़े, यह असंभव बात है। मैं तो समझता हूँ कि यदि भगवान् भी इस दुनिया में आ जाएं तो वे भी कठिनाइयों से नहीं बच सकते। बहुत सारे लोग भ्रान्ति में रहते हैं। मंत्र की साधना करने वाले भी अनेक भ्रान्तियां पालते हैं। देवाल्यों की परिक्रमा करने वाले और देवी-देवताओं को पूजने वाले भी भ्रान्ति में रहते हैं। वे सोचते हैं—मंत्र हमारी रक्षा करेगा, देवी-देवता हमारी रक्षा करेंगे। हमने मंत्र की और देवी-देवता की शरण ले ली है, अब कोई कठिनाई नहीं आएगी। इस भ्रान्ति को तोड़ डालना चाहिए। जो इस भ्रान्ति में रहते हैं, वे नास्तिक बन जाते हैं। भ्रान्ति का पहला परिणाम है— नास्तिकता। मन में यह भ्रान्ति पाल ली कि मैंने अमुक देव या अमुक धर्म की शरण ली है, अब कोई कठिनाई नहीं आएगी। जब

तक कठिनाई नहीं आती तब तक मन विश्वास से भरा रहता है। जब कठिनाई आती है, तब विश्वास हिल उठता है और व्यक्ति कहने लगता है—धर्म या देव फालतू हैं, झूठे हैं, बकवास हैं। छोड़ो इन सबको। वह नास्तिक बन जाता है। वह धर्म को छोड़ देता है। व्यक्ति पहले भ्रान्ति पालता है और फिर नास्तिकता की ओर जाता है। इसलिए हम भ्रान्तियों न पालें। हम इस सचाई को मानकर चलें कि दुनिया में कोई भी व्यक्ति उतार-चढ़ाव, आरोह-अवरोह से बच नहीं सकता। सबमें अनुकूल स्थितियां भी आती हैं और प्रतिकूल स्थितियां भी आती हैं। प्रश्न होता है फिर धर्म का क्या लाभ हुआ ? मंत्र जपने का क्या लाभ हुआ ? अपने आराध्य देव की शरण में जाने का क्या लाभ हुआ ? हम स्पष्ट जानें कि धर्म का काम यह नहीं है कि कठिनाइयां न आएँ। धर्म का काम यह है कि वह व्यक्ति को कठिनाइयां झेलने में सक्षम बनाए। जो व्यक्ति यथार्थ में धार्मिक होता है, वह कठिनाइयों को हंसते-हंसते झेल लेता है। जिस व्यक्ति में धर्म की चेतना जागृत नहीं होती, वह कठिनाइयों के आने पर घुटने टेक देता है और हीन-भावना से ग्रस्त हो जाता है। धर्म हमारी रक्षा करता है। मंत्र हमारी रक्षा करता है। ये हमें कठिनाइयों से उबार लेते हैं। कठिनाई आना एक बात और उस कठिनाई को भोगना, उसका संवेदन करना दूसरी बात है। एक है घटना और एक है घटना का संवेदन, उसका भोग। घटना को नहीं टाला जा सकता, किन्तु भोगने को टाला जा सकता है। जिस व्यक्ति में धर्म की चेतना जाग जाती है वह घटना को जान लेता है, भोगता नहीं।

आप सब शरीर-प्रेक्षा कर रहे हैं। आपने मुझे यह बार-बार कहते सुना होगा कि आप प्रतिक्रिया न करें। दर्द हो, पीड़ा हो, वेदना हो तो उसे समभावपूर्वक देखें, उसे द्रष्टाभाव से देखें, कोई प्रतिक्रिया न करें। यह है प्रेक्षा। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि आप प्रेक्षा करेंगे तो आपका दर्द मिट जाएगा, पीड़ा मिट जाएगी। ये मिट भी सकते हैं, किन्तु यह कोई अनिवार्यता नहीं है। यह अनिवार्य है, निश्चित है कि दर्द या पीड़ा को भोगना अवश्य ही मिट जाएगा। आप दर्द को तटस्थ भाव से देखेंगे। ऐसे देखेंगे कि घुटने में दर्द हो रहा है और आप दूर खड़े यह देख रहे हैं कि घुटने में दर्द है। मुझे दर्द नहीं हो रहा है, घुटने में दर्द हो रहा है। आप उसे द्रष्टाभाव से देखते चले जा रहे हैं। धर्म के द्वारा यह स्थिति उपलब्ध

हो सकती है, मंत्र के द्वारा भी यह स्थिति उपलब्ध हो सकती है कि व्यक्ति में सभी प्रकार के कष्टों, कठिनाइयों, विषम परिस्थितियों को झेलने की क्षमता जाग जाए। वह घटना को तटस्थ भाव से देखे, उसमें लिप्त न हो। उसे भोगे नहीं।

संकल्प टूटने का दूसरा कारण है—परिस्थितियों को झेलने की क्षमता।

संकल्प टूटने का तीसरा कारण है—चित्त की चंचलता। जिसका चित्त चपल होता है उसका संकल्प टूट जाता है। जब चित्त की एकाग्रता सध जाती है, तब संकल्प नहीं टूटता। चित्त में उठने वाले विकल्प, उतार-चढ़ाव संकल्प को टिकने नहीं देते। व्यक्ति उस चपलता में बह जाता है, संकल्प कहीं रह जाता है।

संकल्प को अटूट रखने के लिए, दृढ़ निश्चय के लिए तीन बातें आवश्यक होती हैं—(१) इन्द्रिय विजय, (२) कष्ट झेलने की क्षमता का विकास और (३) चित्त की एकाग्रता।

हम नमस्कार महामंत्र के ध्यान का अभ्यास इसीलिए कर रहे हैं कि हमारी संकल्पशक्ति विकसित हो, दृढ़ हो। हम इसे उलटकर समझें। तीन प्रश्न होंगे— इन्द्रियों को वश में कैसे करें ? कठिनाइयों को झेलने की क्षमता कैसे पैदा करें ? मन को एकाग्र कैसे करें ? ये प्रतिप्रश्न होंगे। हमें इनका उत्तर उसी में खोजना है। जब हमारी संकल्पशक्ति दृढ़ होती है तब इन्द्रियां वश में हो जाती हैं, कठिनाइयां झेलने की चेतना जाग जाती है और मन की चंचलता मिट जाती है। फिर एक उलझन सामने आ गई। ये होते हैं तब संकल्पशक्ति दृढ़ होती है और इन्हें दृढ़ करने के लिए संकल्पशक्ति का विकास चाहिए। एक उलझन-भरा अन्योन्याश्रय दोष आ गया। एक व्यक्ति ने पूछा—‘तुम किसके नौकर हो ?’ उसने कहा—‘जिसका यह घोड़ा है, उसका मैं नौकर हूं।’ फिर पूछा—‘यह घोड़ा किसका है ?’ उसने कहा—‘जिसका मैं नौकर हूं, उसका यह घोड़ा है।’ जिसका यह घोड़ा है, उसका मैं नौकर हूं और जिसका मैं नौकर हूं, उसका यह घोड़ा है। बात दोनों कह दीं, किन्तु समझ में एक भी नहीं आई। प्रश्न का समाधान नहीं मिला। ऐसा कथन अन्योन्याश्रय दोष कहलाता है।

यही अन्योन्याश्रय दोष इस कथन में आता है—तीनों बातें पूरी होती हैं तब संकल्पशक्ति दृढ़ होती है और जब संकल्पशक्ति दृढ़ होती है तब

तीनों बातें पूरी होती हैं। अर्थ कुछ भी नहीं निकला। बलय का आदि-अन्त नहीं बताया जा सकता। यह एक उलझन है। उसको सुलझाने के लिए हमें प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति से अभ्यास करना होगा।

प्रेक्षा-ध्यान के पांच आधारभूत तत्त्व हैं—भावक्रिया, कायोत्सर्ग, भावना, अनुप्रेक्षा और प्रेक्षा।

पहला तत्त्व है—भावक्रिया। मन को जागरूकता का प्रशिक्षण देना भावक्रिया है। जब तक मन जागरूक नहीं होता, तब तक कुछ भी नहीं सधेगा, प्रेक्षा-ध्यान की साधना असंभव हो जाएगी। मैं बार-बार यही दोहराता हूँ—प्रत्येक श्वास को जानते हुए लें। आप कहेंगे—यह कौन-सा बड़ा रहस्य है ? अध्यात्म की कौन-सी गुथी सुलझाई जा रही है ? मैं कहना चाहूँगा कि इसे छोटी बात न समझें। यह बहुत बड़ी बात है। जब तक यह छोटी बात सिद्ध नहीं होगी, कुछ भी नहीं होगा। श्वास के प्रति हम जागरूक नहीं रहेंगे, 'मैं श्वास ले रहा हूँ'—इस प्रकार की जागरूकता जब तक नहीं सधेगी तब तक और किसी काम में जागरूकता नहीं सधेगी। इस स्थिति में प्रेक्षा-ध्यान संभव ही नहीं होगा। मन को इतना जागरूक बना लें कि जो करें उसकी स्मृति में ही मन लगा रहे। मन अन्यत्र न जाए। यह जब सध जाती है तब सिद्धियाँ अपने-आप उपलब्ध हो जाती हैं।

एक अनुभवी साधक मिला। उसने बताया कि उसे वाक्सिद्धि प्राप्त है। मैंने पूछा—इसकी विधि क्या है ? उसने बताया—निश्चित काल, निश्चित स्थान और निश्चित वाक्य तीनों का अभ्यास करने से वाक्सिद्धि हो सकती है। उदाहरण के लिए—वारह वजे, अमुक स्थान पर, अर्ह या किसी भी मंत्र का या किसी भी शब्दावली का उच्चारण करना है तो वह करना ही है, एक क्षण भी इधर-उधर न हो। निश्चित समय, निश्चित स्थान और निश्चित शब्दावली का यदि लंबे समय तक अभ्यास किया जाए तो वाणी में शक्ति आ सकती है, वचनसिद्धि हो सकती है। क्योंकि मन इतना जागरूक हो गया कि उसमें कोई अन्तर नहीं आ सकता। वारह वजते ही मन अपनी क्रिया दोहरा देगा। जब मन की जागरूकता इतनी बढ़ जाती है तब सब कुछ संभव हो जाता है। जब मन सोया हुआ है, अजागरूक है, तब कुछ भी घटित नहीं हो सकता।

मन और कर्म की एकता—यह है भावक्रिया। जो शरीर करे वही मन

करे और जो मन करे वही शरीर करे। दोनों साथ-साथ चलें। मन पूरब में और शरीर पश्चिम में न जाए। मन भी पूरब में जाए और शरीर का कर्म भी पूरब में जाए। दोनों के पैर साथ-साथ उठें, एक साथ समानान्तर रेखा में उठें। इस जागरूकता का नाम है—भाक्क्रिया।

दूसरा तत्त्व है—कायोत्सर्ग। इसका अर्थ है—शिथिलीकरण। श्वास को शान्त करना, शरीर की चेष्टाओं को शान्त करना, मन को खाली करना, कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग का पूरा अभ्यास किए बिना प्रेक्षा-ध्यान की साधना नहीं हो सकती। जब मन में तनाव है, मस्तिष्क और स्नायुओं में तनाव है तब प्रेक्षा-ध्यान कैसे होगा ? जब तनाव की स्थिति होती है, तब बुरे विचारों को, विकल्पों को आने का अवसर प्राप्त होता है। तनाव विकल्पों के लिए उर्वरा भूमि है। विकल्पों के बीज तनाव की उर्वरा भूमि में ही बोए जाते हैं। वे वहीं अंकुरित होते हैं, पुष्पित और फलित होते हैं। इसलिए तनाव को मिटाना जरूरी है।

मानसिक तनाव, स्नायविक तनाव, भावनात्मक तनाव—इनको मिटाना, तनाव की ग्रन्थियों को खोल देना, यह है कायोत्सर्ग।

तीसरा तत्त्व है—भावना। भावना का अर्थ है—संकल्पशक्ति। हम जिस मंत्र की चर्चा कर रहे हैं, वह भावना का प्रयोग है। अर्ह की ध्वनि करते हैं, वह भी भावना का प्रयोग है। हम साधना के प्रारम्भ में अर्ह की ध्वनि इसलिए करते हैं कि ध्यान का वातावरण बन जाए। सारा वायुमंडल ध्यानमय बन जाए और सारे विचार उसमें खो जाएं, सारा स्थान ध्यान के परमाणुओं के उपयुक्त वातावरण से भर जाए। जो व्यक्ति भावना से भावित नहीं होता, वह ध्यान की साधना नहीं कर सकता। प्राचीन शब्द है—भावितात्मा और आज के मनोविज्ञान का शब्द है—इच्छाशक्ति से संपन्न। इसको हम संकल्पशक्ति का विकास भी कह सकते हैं। जैन आगम, बौद्ध पिटक, महाभारत, गीता आदि ग्रन्थों में भी भावितात्मा शब्द प्रयुक्त हुआ है। जो भावितात्मा नहीं होता, जिसने अपनी आत्मा को भावित नहीं किया, वह साधना नहीं कर सकता। साधना तो क्या, वह बुरा काम भी नहीं कर सकता। बुरा काम करने के लिए भी भावित आत्मा होना जरूरी है। जो व्यक्ति क्रूरता से अपने मन को भावित नहीं करता, वह हत्या नहीं कर सकता, चोरी नहीं कर सकता। हर आदमी चोरी नहीं कर सकता, हर

आदमी डकैती नहीं कर सकता, हर आदमी हत्या नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति ने क्रूरता के विचारों से अपने-आपको भावित कर लिया है, वही हत्या कर सकता है, डकैती डाल सकता है, चोरी कर सकता है। वही क्रूर कर्म कर सकता है। जिस व्यक्ति ने अपने विचारों को, अपने मन को भावित नहीं किया, वह व्यक्ति अच्छा काम नहीं कर सकता। अच्छे विचारों से भी मन को भावित किया जा सकता है और बुरे विचारों से भी मन को भावित किया जा सकता है।

भावित होने पर रासायनिक परिवर्तन होते हैं। पानी जब रंगीन बोतलों में सूर्य की रश्मियों से भावित होता है तब उसके गुण-धर्म बदल जाते हैं, उसकी शक्ति बदल जाती है, उसकी क्षमता बदल जाती है। हर व्यक्ति और हर पदार्थ भावित हो सकता है। व्यक्ति जिस प्रकार की भावना से अपने आपको भावित करता है, वह वैसा ही हो जाता है। **‘यादृशी भावना यस्य, बुद्धिर्भवति तादृशी—**जिसकी जैसी भावना होती है, उसकी बुद्धि वैसी ही बन जाती है।

मंत्र की साधना भावना का प्रयोग है। मंत्र की साधना अपने आपको भावित करने की साधना है। जब हम अर्हत् का ध्यान करते हैं तो अर्हत् की विशेषताओं से मन को भावित करते हैं। जैसे ही ‘णमो अरहंताणं’—अर्हत् का ध्यान किया, चाहे अक्षर-ध्यान किया—पद के एक-एक अक्षर का ध्यान किया, चाहे पद का ध्यान किया, चाहे अर्थ का ध्यान किया, इससे हमारे मन का कण-कण, हमारी चेतना का कण-कण अर्हत् से भावित हो जाता है और साधक स्वयं अर्हत् बन जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है—जो व्यक्ति अर्हत् को जानता है वही अपनी आत्मा को जान सकता है।

‘जो जाणदि अरहन्ते, दब्बत्तगुणत्तपञ्जक्तेहिं ।

सो जाणदि अप्पाणं, मोहो तस्स त्थं जादि । ।’

—‘जो द्रव्य, गुण और पर्याय के द्वारा अर्हत् को जानता है, वही अपनी आत्मा को जान सकता है। जो अपनी आत्मा को जानता है, उसका मोह विलीन हो जाता है।’

जैसे ही हमने कहा अर्हत्, अर्हत् के गुण, द्रव्य और पर्याय—सब हमारी चेतना में स्वयं स्फूर्त हो गए। वार-वार अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन,

अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति को दोहराने की आवश्यकता नहीं है। प्रारम्भ में दोहराना आवश्यक होता है। अभ्यास परिपक्व हो जाने के पश्चात् जैसे ही कहा 'अर्हत्', सारा का सारा चैतन्य झंकृत हो उठता है, सारी शक्ति विकसित हो जाती है और आनन्द की लहरों सारे शरीर को आप्लावित करने लगती हैं।

व्यक्ति बाजार में जाता है। जौहरी की दुकान से हीरे खरीदता है। हीरों की चमक देखता है, उनकी विशुद्धि देखता है और 'हार' के लिए उपयुक्त हीरे खरीद लेता है। हार बन जाता है। सारी कल्पनाएं उसमें समा जाती हैं। फिर जब उसे मांगने की आवश्यकता होती है तब वह केवल इतना ही कहता है—'हीरों का हार लाओ।' वह यह नहीं कहता कि वे हीरे जो चमकते हैं, विशुद्ध हैं, इतने मूल्य वाले हैं। 'हार' कहने से ये सारी चीजें समा जाती हैं।

इसी प्रकार जैसे ही अर्हत् की ध्वनि सुनाई दी, सारी चेतना अर्हत्मय हो गई। अर्हत् से झंकृत हो गई। फिर कोई विशेषण की जरूरत नहीं है। जो अर्हत् को जानता है उसके अर्हत् की स्मृति आती है, चेतना में अर्हत् उतरता है, उसे अपनी आत्मा का बोध होता है और शरीर के कण-कण में अर्हत् का अनुभव होने लगता है। ध्यान का चौथा चरण सम्पन्न हो जाता है। जिस व्यक्ति में अर्हत् की प्रतिष्ठा हो गई, जिसे अपने अर्हत् का अनुभव हो गया, उस व्यक्ति में फिर मोह नहीं टिक सकता। उसका मोह विलीन हो जाता है।

हम जो भावना का प्रयोग कर रहे हैं, मंत्र का प्रयोग कर रहे हैं, मंत्र का ध्यान कर रहे हैं, वह इसीलिए कर रहे हैं कि हम अपने मन को अर्हत् सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि—इन पांच परमेष्ठियों से भावित कर लें, हमारा मन पंच परमेष्ठीमय बन जाए। हमारा मन इतना भावित हो जाए, हमारी संकल्पशक्ति इतनी दृढ़ और विकसित हो जाए कि विश्व की कोई भी शक्ति हमें पंचपरमेष्ठी से एक अणु भी दूर न कर सके और हम निरन्तर अपने स्वरूप का—अर्हत्मय स्वरूप का अनुभव करते रहें। संकल्पशक्ति का विकास अत्यन्त आवश्यक है। जब तक यह उपलब्ध नहीं होता तब तक प्रेक्षा-ध्यान के अवरोधों को समाप्त नहीं किया जा सकता। शरीर-प्रेक्षा, श्वास-प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा या विचार-प्रेक्षा—इनको आप सहज-सरल न

समझें कि मन को लगाया और सब कुछ देखने लग गया। ऐसा नहीं है। कठिन कर्म है। अभ्यास-सापेक्ष है। कितने अवरोध आते हैं। व्यक्ति शरीर की प्रेक्षा करने बैठता है और बीच में ही इतने विकल्प उठ जाते हैं कि शरीर-प्रेक्षा कहीं रह जाती है और मन विश्व की यात्रा करने निकल पड़ता है, ऑफिस की या दुकान की यात्रा करने के लिए प्रस्थान कर देता है। जब हम मन को भावित करना सीख जाते हैं, संकल्पशक्ति वृद्ध हो जाती है तब ये यात्राएं नहीं होतीं। विकल्प और विचार के परमाणु हमारे मस्तिष्क के आस-पास मंडराते हैं, किन्तु हमारी आत्मा भावित है, मन भावित है और मंत्र की आराधना से हमारी संकल्पशक्ति विकसित है तो वे परमाणु भीतर प्रवेश नहीं कर पाएंगे। **मंत्र एक कवच है, प्रतिरोधात्मक शक्ति है, एक सशक्त दुर्ग है।** बाहर का एक अणु भी भीतर प्रवेश नहीं पा सकता। जिस व्यक्ति ने आध्यात्मिक मंत्रों की आराधना के द्वारा अपने मन को भावित कर लिया, अपने मस्तिष्क के चारों ओर एक मजबूत कवच बना लिया, उसमें बुरे विचार के परमाणु कभी प्रवेश नहीं कर पाएंगे। वे परमाणु आएंगे, टकराएंगे, टकरा-टकराकर लौट जाएंगे, भीतर नहीं जा सकेंगे, क्योंकि भीतर प्रवेश करने की क्षमता नहीं रहती।

डॉक्टर दो दिशाओं में काम करता है। वह बीमारी के कीटाणुओं को नष्ट करने की दवा देता है और साथ-साथ प्रतिरोधात्मक शक्ति को बढ़ाने का भी उपाय करता है। जिस रोगी की प्रतिरोधात्मक शक्ति कम होती है, जिसका रजिस्टेंट पॉवर कम होता है, उसको दी जाने वाली औषधियां अधिक लाभप्रद नहीं होतीं। जब शरीर में बीमारियों से लड़ने की शक्ति नहीं है तब दवाई क्या करेगी ? दवाई काम तब करती है, जब शरीर उसका काम करे, शरीर की प्रकृति उसका सहयोग करे। जब प्रतिरोधात्मक शक्ति विकसित होती है, बीमारी से जूझने की क्षमता होती है, तब दवाई काम करती है। दोनों साथ-साथ चलने चाहिए—बीमारी के कीटाणुओं का नाश और उनसे जूझने की प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास।

मंत्र के द्वारा दोनों काम होते हैं—(१) **मन की विकृति मिटती है** (२) **प्रतिरोधात्मक शक्ति विकसित होती है।** शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि बाहर के आक्रमण का भय नहीं रहता। ऊर्जा का वातावरण प्रबल बन जाता है। बाहर के आघात कम पहुंचते हैं या पहुंचते ही नहीं। जिस व्यक्ति ने

नमस्कार मंत्र जैसे महामंत्र से अपने मन को भावित कर लिया, मंत्र की हजारों-लाखों आवृत्तियां कर मन को शक्तिसंपन्न बना लिया, वह व्यक्ति अप्रिय या प्रतिकूल घटनाओं को द्रष्टा बनकर देखता है, उनको भोगता नहीं। उन घटनाओं का उसके मन पर कोई असर नहीं होता। इस प्रतिरोधात्मक शक्ति के निर्माण के लिए, मन को भावित करने के लिए, एक सुदृढ़ कवच या वज्र-पंजर बनाने के लिए भावना का प्रयोग बहुत जरूरी है। भावना की बात प्रेक्षा-ध्यान के लिए प्रतिकूल नहीं है, किन्तु उसका आधारभूत तत्त्व है। इस आधार को मजबूत कर लेने पर प्रेक्षा-ध्यान सुविधापूर्वक हो सकता है। अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

चौथा तत्त्व है—**अनुप्रेक्षा**। हमारे मन पर प्रतिदिन मैल जमता है। वह मलिन होता है। शरीर पर जमने वाले मैल को साफ करने का उपाय मनुष्य प्रतिपल करता है। वह स्नान करता है, मंजन करता है, और-और उपाय भी करता है। मन पर भी मैल जमता है। मनुष्य इस मैल को हटाने के लिए नहीं सोचता। उसे यह भान ही नहीं है कि मन पर भी मैल जमता है, मन भी मलिन होता है। मन को साफ करने के लिए उसे पानी से नहलाने की आवश्यकता नहीं है, उसे साबुन या अन्य साधनों से धोने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु उसे साफ करने के अन्य उपाय हैं। जब तक मन साफ नहीं होता, तब तक ध्यान की स्थिति ही नहीं बनती। जब मन की मलिनता मिट जाती है, साफ हो जाती है, तब ध्यान होने लगता है।

जब आदमी बीमार होता है तब छटपटाता है, पैरों को पछाड़ता है, हाथों को पटकता है। जब आदमी सन्निपात अवस्था में होता है, हिस्टीरिया से ग्रस्त होता है या उन्माद या आवेश से भरता है तब उसमें एक विशेष शक्ति जागती है। दस आदमी भी उसे थाम नहीं पाते। इसी प्रकार जब मन बीमार होता है, मलिन होता है, मैल से ग्रस्त होता है तब छटपटाता है और मन भी अपने हाथ-पैर पछाड़ने लग जाता है। ऐसी स्थिति में मन एकाग्र नहीं हो सकता।

मन का मैल मिटाना बहुत जरूरी है। उसे धोना चाहिए। मन पर मूर्च्छा का मैल, मोह का मैल, ममत्व का मैल, राग-द्वेष का मैल, वासना का मैल, कषाय का मैल, न जाने कितने मैल हैं। इस स्थिति में प्रेक्षा वहां तक पहुंच ही नहीं सकती। अनुप्रेक्षा मन को पवित्र करने का, मन पर जमे मैल को

धोने का अनुपम उपाय है।

मन पर मैल तब जमता है जब हम अनित्य को नित्य मानकर चलते हैं। संयोग को शाश्वत और विजातीय को सजातीय मानकर चलते हैं। हम इस बात को सिद्धान्त से और व्यवहार से भी जानते हैं कि पदार्थ अनित्य हैं, संयोग अनित्य हैं। जो पदार्थ प्राप्त है, वह अवश्य नष्ट होता है। जो संयोग मिला है, उसका निश्चित ही वियोग होता है। पदार्थ अनित्य है, पदार्थ का संयोग अनित्य है और पदार्थ विजातीय है। चेतना का गुण-धर्म पदार्थ से भिन्न है। हम इन सब तत्त्वों को जानते हैं, किन्तु पदार्थ को नित्य मानकर व्यवहार करते हैं, पदार्थ के संयोग को शाश्वत मानकर चलते हैं और पदार्थ को सजातीय मानते हैं, अपना मानते हैं। हम इसे जानते नहीं, केवल मानते हैं। जानने और मानने में बहुत बड़ा अन्तर है। जिस दिन हम मानने की अवस्था को पार कर जानने की स्थिति में पहुँच जाएंगे तब हमारे लिए पदार्थ पदार्थ मात्र होगा और चेतन चेतन होगा। पदार्थ का उपयोग हो सकता है, पदार्थ का संयोग हो सकता है, किन्तु पदार्थ शाश्वत नहीं हो सकता, पदार्थ सजातीय नहीं हो सकता, अपना नहीं हो सकता। अशाश्वत को शाश्वत मानने का आरोप, विजातीय को सजातीय मानने का आरोप, केवल मानने के कारण ही होता है। यदि जान लिया जाता है तो सारे आरोप नष्ट हो जाते हैं। जब तक मन पर मोह या मूर्च्छा का मैल जमा रहता है, तब तक व्यक्ति सब कुछ मानता चला जाता है, जानता कुछ भी नहीं है। पदार्थ के मूल स्वरूप को जाने बिना उसे जाना नहीं जा सकता।

मनुष्य नाम और रूप के चक्कर में पड़कर सब कुछ मानता चला जा रहा है और यह झूठा दंभ भरता है कि वह सब कुछ जानता है। हम व्यक्तियों को नाम से जानते हैं। हमने नाम का एक चौखटा बना रखा है। उस चौखटे में जो आकृति आती है, उसे हम अमुक नाम से जान लेते हैं। नाम और आकृति को हटा दो, फिर हम कुछ भी नहीं जान पाते। हमारा भ्रम मान्यता के आधार पर पल रहा है। गहराई में हम उतरकर देखें। सारा संसार मानने की कारा में बंदी है। जानने की बात उससे बहुत दूर है। जिस दिन प्रेक्षा-ध्यान सिद्ध होगा, मंत्र की आराधना सिद्ध होगी और शक्तिकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र तक मन को ले जाने या प्राणधारा को प्रवाहित करने की स्थिति बनेगी तब हम कह सकेंगे कि हम जानते हैं। तब मानने की बात छूट

जाएगी। उस भूमिका में पहुंचकर हम कह सकेंगे कि हम जानते हैं, मानते नहीं। जब जानने की बात प्राप्त हो जाएगी तब शरीर भी छूट जाएगा। शरीर के छूटने पर, शरीर पर बनी ममत्व-ग्रन्थि के टूटने पर ममत्व टूटने लगेगा। शरीर के छूटने का अर्थ शरीर से अलग होना नहीं है, किन्तु शरीर के साथ जो ममकार है, वह छूट जाएगा, वह ढीला पड़ जाएगा।

अनुप्रेक्षा के माध्यम से भ्रान्तियों और विपर्ययों को तोड़ा जा सकता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा मन पर जमे मैल को काटा जा सकता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा मानने की भूमिका से उठकर जानने की भूमिका तक पहुंचा जा सकता है।

पांचवां तत्त्व है—प्रेक्षा। जब भावक्रिया, कायोत्सर्ग, भावना और अनुप्रेक्षा—ये चारों आधारभूत तत्त्व सध जाते हैं तब प्रेक्षा की स्थिति मजबूत बन जाती है। हमारे देखने की शक्ति का विकास होता है। इससे चेतना को, ज्ञान को और दर्शन को दौड़ने के लिए, विकसित होने के लिए पूरा अवकाश प्राप्त हो जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को समझ कर चलें, तब हम मंत्र की आराधना की उपयोगिता को समझ सकेंगे। यह पूरी प्रक्रिया जब ज्ञात नहीं होगी तब प्रेक्षा-ध्यान के संदर्भ में मंत्र की आराधना का क्या उपयोग है, इसे भी हम समझ नहीं सकेंगे।

७. आध्यात्मिक चिकित्सा [२]

- जिससे हम स्वस्थ न हों उस धर्म के प्रति हमारा आकर्षण नहीं हो सकता।
- अनुलोम-विलोम प्रक्रिया—स्वस्थ शरीर में बलवान् आत्मा, यह शरीर-चिकित्सा का सूत्र। आध्यात्मिक स्वास्थ्य होने पर शरीर स्वस्थ, यह अध्यात्म-चिकित्सा का सूत्र।
- अध्यात्म-रोग—आवरण, विकार और अन्तराय। रुग्ण अवस्था में चेतना, आनन्द और शक्ति का समन्वित विकास नहीं हो सकता।
- आध्यात्मिक चिकित्सा—आवरण-प्रेक्षा, विकार-अनुप्रेक्षा और अन्तराय भावना।

•

उस धर्म के प्रति हमारे मन में आकर्षण नहीं हो सकता जो हमारे वर्तमान को उज्वल नहीं बनाता, जो हमारे अन्धकार को दूर नहीं करता, हमारे पथ को प्रशस्त या आलोकित नहीं करता। एक युग था मान्यता का। उसमें मान्यता के आधार पर धर्म चलता था। आज वैज्ञानिक युग है। यह तार्किक और बौद्धिक युग है। इसमें मान्यता के आधार पर धर्म नहीं चल सकता। इस युग में वही धर्म चल सकता है, जो प्रायोगिक है और हमारे अनुभव का विषय बनता है, हमारे अनुभवों में उतरता है। जो अनुभव में नहीं उतरता, जिसका परिणाम हमें प्रतीत नहीं होता, जिसका फल हमें उपलब्ध नहीं होता, उस धर्म के प्रति, वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले व्यक्ति का आकर्षण नहीं हो सकता।

हमने प्रेक्षा-ध्यान पद्धति का मार्ग चुना है। इसका मूल कारण है कि धर्म प्रायोगिक बने और व्यक्ति-व्यक्ति के अनुभव में उतरे। वह धर्म तर्क से हटकर, शब्द और बुद्धि से हटकर; अनुभव के धरातल पर आ जाए। जो बात अनुभव के धरातल पर आ जाती है, उसे कोई नहीं मिटा सकता। हजार तर्क सामने आ जाएं, किन्तु जिस व्यक्ति ने जो अनुभव प्राप्त कर लिया, वह तर्क को कभी स्वीकार नहीं करता। जब स्वयं का अनुभव नहीं होता, अपनी पूंजी नहीं होती—सब कुछ उधार ही उधार होता है, तब व्यक्ति को जिधर झुकाना चाहें, झुका सकते हैं।

हमने नमस्कार महामंत्र की आराधना की, अभ्यास किया और अनेक प्रयोग किए। यह सब इसलिए किया कि उससे हमारी वृत्तियां बदलें, हमारा स्वभाव बदले, पदार्थ के प्रति होने वाला आकर्षण बदले और अपना अस्तित्व जो अर्हत् है, वह प्रकट हो जाए। यही हमारा उद्देश्य है। हम किसी दूसरे अर्हत् को प्रकट करना नहीं चाहते। हम अपने ही अर्हत् को अपने द्वारा प्रकट करना चाहते हैं। हम स्वयं सत्य को खोजें। अपने भीतर जो सत्य छिपा है उसे प्रकट करें, प्राप्त करें। अर्हत् का ध्यान हम इसलिए करते हैं कि भीतर सोया हुए अर्हत् जाग जाए।

अर्हत् के ध्यान से, अर्हत् के मंत्र के जप से अर्हत् जाग सकता है, किन्तु जब तक मंत्रों की भावना अवचेतन मन तक नहीं पहुंच जाती तब तक हमारा अर्हत् कैसे जागेगा ? यह एक प्रश्न है। मनोविज्ञान का सिद्धांत है कि जो बात अवचेतन मन तक नहीं पहुंच पाती, वह हमें प्रभावित नहीं कर सकती। जो संकल्प केवल स्थूल मन तक ही पहुंचता है, वह संकल्प टिकता नहीं, टूट जाता है। स्थूल मन की शक्ति सीमित है। उसके पास अक्षय शक्ति का खजाना नहीं है। इसलिए जो बात केवल स्थूल मन तक, चेतन मन तक, बाहरी मन तक ही पहुंचती है उस पर ज्यादा भरोसा नहीं किया जा सकता। अवचेतन मन बहुत शक्तिशाली होता है। उस तक पहुंचा हुआ संकल्प फलदायी होता है। वह टूटता नहीं। इसीलिए मनोविज्ञान की भाषा में कहा जाता है कि भावना अवचेतन मन तक पहुंचनी चाहिए। मंत्रशास्त्र की भाषा में कहा जाता है कि भावना प्राण तक पहुंचनी चाहिए। जो मंत्र शब्द की भूमिका को छोड़कर भीतर गहरे में नहीं उतरता, मनोमय नहीं बनता, उसमें बहुत क्षमता नहीं बढ़ती। जब तक मंत्र मन की

भूमिका को पारकर प्राणमय नहीं बन जाता, प्राण की भूमिका का आरोहण नहीं कर लेता तब तक मंत्र के द्वारा जो उपलब्धि होनी चाहिए, वह कभी नहीं हो सकती, चाहे हम उस मंत्र का जप वर्षों तक करते रहें, कुछ लाभ नहीं होगा। इसीलिए यह हमें समझ लेना है कि हमारा मंत्र शब्द की भूमिका को पार कर मन की भूमिका में जाए, मन की भूमिका को पार कर प्राण की भूमिका में जाए।

इस संदर्भ में हमें प्राण की दार्शनिक भूमिका को भी समझ लेना चाहिए। हम शरीर-प्रेक्षा करते हैं। कुछ लोग कहते हैं—शरीर को क्या देखें ? कौन-सा भगवान् या परमात्मा या इष्टदेव है जो हम इसे देखें ? ऐसा कहने वाले सचाई को विस्मृत कर देते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ—हमारा चैतन्यमय आत्मा या अर्हत् कहां है ? इस शरीर के भीतर है या अन्यत्र ? अनन्त ज्ञानसम्पन्न, अनन्त शक्तिसम्पन्न, अनन्त आनन्दसम्पन्न और अनन्त चेतनासम्पन्न जो आत्मा है, परमात्मा है, वह इसी शरीर के भीतर विराजमान है। आत्मा की शक्ति को बाहर प्रकट करने वाला कर्मशरीर कहां है ? वह सूक्ष्म शरीर भी इसी स्थूल शरीर के भीतर है। कर्मशरीर आत्मा से शक्ति उपलब्ध करता है। उस शक्ति को बाहर फेंकने का सबसे बड़ा माध्यम है तैजस शरीर। वह कहां है ? वह भी इसी शरीर के भीतर है, बाहर नहीं। तैजस शरीर के द्वारा सारी जीवन-यात्रा को संचालित करने वाली प्राणशक्ति कहां है ? वह भी इसी शरीर के भीतर है। प्राणशक्ति से संचालित होने वाले पांच इन्द्रिय प्राण, मन प्राण, वचन प्राण, काया प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण और आयुष्य प्राण—ये दशों प्राण कहां हैं ? ये भी शरीर में ही हैं। सब शरीर में हैं, बाहर नहीं। प्राणशक्तियां इसी शरीर में, प्राण का स्रोत इसी शरीर में, तैजस शरीर इसी शरीर में, कर्म शरीर इसी शरीर में और परम प्रभु आत्मा भी इसी शरीर में। कितना महत्त्वपूर्ण है यह शरीर। जब सब कुछ इसके भीतर है तब क्या स्थूल शरीर के दरवाजों को खोले बिना, उनमें प्रवेश किए बिना, क्या आत्मा तक पहुंचा जा सकता है ? सीधे आत्मा तक पहुंचने की बात तथ्यपूर्ण नहीं है। कुछेक शक्तिशाली व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्होंने अनेक जन्मों में अनेक प्रकार का तप तपा है, वे व्यक्ति सीधे आत्मा तक पहुंच सकते हैं। साधारण व्यक्ति सीधा आत्मा तक नहीं जा सकता। वे व्यक्ति अपवाद मात्र होते हैं। उनका अनुसरण नहीं किया जा

सकता। वह सामान्य मार्ग नहीं बन सकता। सामान्य मार्ग यही है कि साधक सबसे पहले स्थूल शरीर की उपासना करे, उसे अत्यन्त सूक्ष्मता से देखे, समझे। स्थूल शरीर के स्पंदनों को तथा सूक्ष्म-शरीर—कर्म शरीर के स्पंदनों को पकड़ने की क्षमता विकसित करे। इस क्षमता का विकास हुए बिना आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो सकती।

कुछ लोग कहते हैं कि चैतन्य-केन्द्रों पर ध्यान प्रारंभ से ही क्यों नहीं कराया जाता ? वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि जब तक श्वास से परिचय नहीं हो जाता, दीर्घश्वास-प्रेक्षा नहीं सध जाती, शरीर-प्रेक्षा का अभ्यास परिपक्व नहीं हो जाता तब तक चैतन्य-केन्द्रों पर ध्यान नहीं हो सकता। विकास क्रमिक होता है। हमें एक क्रम से ही अभ्यास करना चाहिए। प्रयोग कराने वाले व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिए कि प्रयोग करने वाले व्यक्ति की चेतना को कैसे धीमे-धीमे आगे बढ़ाया जाए। जब वह साधक आगे की भूमिका तक अभ्यास कर लेता है तब कोई कठिनाई नहीं होती। एवरेस्ट पर्वत की चोटी तक पहुंचने वाला व्यक्ति क्रमशः आरोहण करते-करते वहां तक पहुंचता है। एक ही दिन में वहां नहीं पहुंच जाता। यदि यह सोचे कि इतना लंबा समय लगा, अच्छा होता कि पहले ही दिन यहां पहुंच जाता, तो यह असंभव कल्पना होगी। आरोहण का एक क्रम होता है। उस क्रम को छोड़कर हम छलांग नहीं भर सकते।

मंत्र के द्वारा होने वाली क्षमता का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक शरीर और शरीर के भीतर होने वाले चैतन्य-केन्द्रों के स्पंदनों का रहस्य नहीं समझ लिया जाता।

नमस्कार महामंत्र बहुत प्रशस्त मंत्र है। उसमें हम अर्हत् को नमस्कार करते हैं, सिद्धों को नमस्कार करते हैं; अध्यात्म-यात्रा के महान् संवाहक आचार्य को नमस्कार करते हैं, समूचे श्रुतसागर का मंथन करने वाले उपाध्याय को नमस्कार करते हैं और समूचे लोक में विद्यमान अध्यात्म साधकों को नमस्कार करते हैं। इन सबको नमस्कार करते हैं। हमारा ध्येय ऊंचा है। हमारी पदावली बहुत पवित्र है। हमारी भावना बहुत अच्छी है। भौतिक उपलब्धि की कोई कामना नहीं है। केवल आत्म-जागरण की ही भावना है। इतना होने पर भी जब तक पूरी विधि समझ में नहीं आती, चैतन्य-केन्द्रों के साथ, प्राणशक्ति के साथ मंत्र को जोड़ने की कला समझ में

नहीं आती तब तक आरोहण नहीं हो सकता। पूरी विधि ज्ञात हुए बिना सफलता नहीं मिलती।

प्राचीन-समय की बात है। आचार्य पादलिप्त आकाश में उड़ने की शक्ति से संपन्न थे। वे मंत्र या तंत्र के द्वारा नहीं, किन्तु पैरों पर रासायनिक लेप कर आकाश में उड़ान भर लेते। बहुत लम्बी यात्रा कर लौटते। उस समय के प्रसिद्ध रसायनशास्त्री नागार्जुन ने यह जाना। उन्होंने आचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया। जब आचार्य पादलिप्त आकाश में उड़कर पृथ्वी पर लौटते तब नागार्जुन उनका पाद-प्रक्षालन करते और उस लेप में रहे द्रव्यों को जानने के लिए उस पानी को सूँघते और आस्वादन लेते। प्रतिदिन यह क्रम चलता रहा। वे स्वयं बड़े वैज्ञानिक और रसायनशास्त्री थे। धीरे-धीरे वे उस लेप के सारे पदार्थों को पहचानने में सफल हो गए। वे अपने घर गए। उन्हीं पदार्थों से लेप तैयार कर अपने पैरों पर लगाया। वे आकाश में उछलने लगे। जमीन पर आते और फिर आकाश में उछलते। जैसे मुर्गा उछलता है वैसे ही उनकी उड़ान होती। उड़ने में वे सफल नहीं हो सके। वे आचार्य के पास आए और लेप में मिश्रित द्रव्यों की जानकारी देने की प्रार्थना करने लगे। आचार्य पादलिप्त को सारी जानकारी हो चुकी थी। शिष्य की सुपात्रता देखकर आचार्य ने कहा—और वस्तुओं को तो तुमने पकड़ लिया, किन्तु इन वस्तुओं के साथ चावल का मांड मिलाया जाता है, उसे तुम नहीं पकड़ सके। तुम चावल के मांड से लेप तैयार करो। नागार्जुन ने वैसे ही किया और वे इस लेप के माध्यम से आकाश की लंबी यात्रा करने में सफल हो गए।

विधि विधि होती है। जब तक पूरी विधि ज्ञात नहीं होती तब तक कुछ नहीं हो सकता।

कार्य तीन प्रकार के होते हैं—अकृत, अविधिकृत और विधिकृत। एक आदमी कोई काम करता ही नहीं। वह कार्य अकृत ही रहता है। एक आदमी कोई कार्य करता है, किन्तु विधिपूर्वक नहीं करता। उससे भी जो उपलब्ध होना चाहिए, वह उपलब्ध नहीं होता। वह अविधिकृत कार्य है। एक आदमी कोई कार्य विधिपूर्वक करता है। वह बहुत जल्दी सफल हो जाता है। वह विधिकृत कार्य है।

हम यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि जो लोग प्रेक्षा-ध्यान को

विधिपूर्वक कर रहे हैं, वे आगे बढ़ रहे हैं, उन्हें कुछ अनुभव भी होने लगा है। हम 'णमो अरहंताणं' का ध्यान श्वेत वर्ण में करते हैं। चार-पांच दिनों में ये सातों अक्षर सफेद वर्ण में चमकते हुए दीखने लग जाते हैं। कुछ व्यक्तियों को और अधिक समय लगता है। यह सही है कि जो साधक निरंतर तीन या छह महीने तक यह ध्यान विधिपूर्वक करता है, वर्ण उसकी आंखों के सामने स्पष्ट हो जाते हैं।

नमस्कार महामंत्र के पांच पद हैं और पांचों के पांच भिन्न-भिन्न वर्ण हैं। अर्हत् का वर्ण है श्वेत, सिद्ध का वर्ण है लाल, आचार्य का वर्ण है नीला, उपाध्याय का वर्ण है पीला और मुनि का वर्ण है काला। नमस्कार महामंत्र की उपासना करने वाला साधक 'णमो अरहंताणं' को श्वेत वर्ण में, 'णमो सिद्धाणं' को लाल वर्ण में, 'णमो आयरियाणं' को पीले वर्ण में, 'णमो उवज्झायाणं' को नीले वर्ण में और 'णमो लोए सब्ब साहूणं' को काले वर्ण में लिखें। आंखें बन्द कर उन सभी अक्षरों को पढ़ें। चमकते हुए रंगों में ये सारे वर्ण बन्द आंखों के सामने स्पष्ट हो जाएंगे। इस अभ्यास की संपूर्ति के लिए तीन या छह महीने का समय अपेक्षित है। जिस व्यक्ति का मन संवेदनशील होता है वह जल्दी पकड़ लेता है। जो व्यक्ति कम संवेदनशील होता है, उसे पकड़ने में समय लग सकता है। समय की लंबाई होने से यह न समझें कि कार्य विधिपूर्वक नहीं हो रहा है। हम विधिपूर्वक ही कर रहे हैं, परन्तु सफलता की प्राप्ति व्यक्ति के संस्कार-सापेक्ष और समय-सापेक्ष होती है। दस दिन के शिविर-काल में भी कुछ-कुछ अभ्यास हो ही जाता है। सबका अपना-अपना अनुभव होता है। जब अनुभव होता है तब व्यक्ति सोचता है—अरे ! यह मार्ग तो बहुत अच्छा था। हमने इतने दिन तक ध्यान ही नहीं दिया।

नमस्कार महामंत्र की उपासना विधिपूर्वक की जाए। शब्द से अशब्द तक, शब्द से अर्थ तक और स्व-स्वरतंत्र के स्पंदनों से प्राण की धारा तक, प्राण के स्रोत तक ले जाया जाए तो मंत्र की शक्ति जागृत होती है। मन्त्रशक्ति के जागृत होने पर यह संदेह नहीं रहता कि इस ध्यान से परिवर्तन हो रहा है या नहीं ? कुछ प्राप्त हो रहा है या नहीं ? शब्द से अशब्द तक, शब्द से प्राण तक कैसे ले जाया जाए—इस प्रक्रिया की चर्चा पहले ही हो चुकी है, फिर भी संक्षेप में उसकी चर्चा कर दूं।

चैतन्य केन्द्रों का रहस्य समझे बिना शब्द को प्राण तक नहीं ले जाया जा सकता। जब तक चैतन्य-केन्द्र का हमें परिचय नहीं है, वहां होने वाले स्पंदनों का परिचय नहीं है, वहां होने वाली सूक्ष्म ध्वनि के स्पंदनों से हम परिचित नहीं हैं तब तक मंत्र की शब्दावली को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। सबसे पहले मन को शक्तिकेन्द्र पर केन्द्रित करना होता है। वहां होने वाले प्रारंभिक स्पंदनों को पकड़ना होता है। उसके पश्चात् सुषुम्ना के मार्ग से, त्रसनाडी से, शब्दावली को ऊपर की ओर ले जाते हैं। ऊपर आते ही वह शब्दावली की भूमिका बदल जाती है, जब वह शब्दावली दर्शन केन्द्र में पहुंचती है तब मन की शब्दावली बन जाती है। भाषा की शब्दावली पीछे छूट जाती है। फिर 'णमो अरहंताणं' का पाठ नहीं होता, 'णमो अरहंताणं' का साक्षात् हो जाता है। और जब इस दर्शन-केन्द्र से आगे ललाट से ज्ञान-केन्द्र तक वह अर्थ और ऊपर आरोहण करता है तब स्वयं अर्हत् का साक्षात् हो जाता है। अर्हत् पद के अर्थ की रश्मियां हमारे समूचे शरीर में फैल जाती हैं। शब्द 'अशब्द' बन जाता है। पद 'अपद' बन जाता है। मंत्र का प्रयोजन प्रकट हो जाता है! मंत्र वीर्यवान् और शक्तिशाली बन जाता है। यह सारा होता है ज्ञान-केन्द्र में पहुंचने पर। मंत्र जब तक वहां नहीं पहुंचता तब तक उससे बहुत बड़ी आशा नहीं की जा सकती।

इसलिए जब तक हमारा संकल्प अवचेतन मन तक नहीं पहुंच जाता, अवचेतन मन का संकल्प नहीं बन जाता तब तक वह शक्तिशाली नहीं बनता। आज के परामनोवैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक सजेशन और ऑटोसजेशन के द्वारा चिकित्सा करते हैं। एक है—दूसरे व्यक्ति के द्वारा दी जाने वाली सूचना और दूसरी है—स्व-सूचना। व्यक्ति स्वयं को ही सूचना देता है। व्यक्ति अपने-आप को सूचना देता है—'मैं स्वस्थ हो रहा हूं, मैं स्वस्थ हो रहा हूं।' जब यह बात अवचेतन मन तक पहुंच जाती है, व्यक्ति स्वस्थ होना शुरू हो जाता है। अवचेतन मन तक पहुंचे हुए सजेशन बहुत लाभप्रद होते हैं। स्थूल मन तक पहुंचने वाले सजेशन थोड़ी-सी ऊर्जा पैदा करते हैं, जिससे आधा गिलास पानी भी गरम नहीं किया जा सकता। बहुत बड़ा परिणाम नहीं आता। बहुत छोटा परिणाम आता है। इसीलिए सुझावों के प्रयोक्ता को बताया जाता है कि जब नींद आ रही हो तब सुझाव दो, जिससे अवचेतन मन स्थूल मन की बात को पकड़ ले। जब जागते हैं

तब हमारा स्थूल मन सक्रिय होता है, चेतन मन सक्रिय होता है। जब हम सोते हैं तब हमारा अन्तर्मन सक्रिय हो जाता है, चेतन मन सो जाता है। जब चेतन मन से सुझाव को अवचेतन मन पकड़ लेता है, अन्तर्मन पकड़ लेता है तो वह सुझाव बहुत शक्तिशाली बन जाता है। वह रोम-रोम में व्याप्त हो जाता है।

योग के आचार्य बतलाते हैं कि कोई भावना या संकल्प करना हो, अपने आपको कोई सुझाव देना हो तो वह पूरक के समय दो। जब श्वास को भीतर खींचो तब उसके साथ सुझाव को जोड़ दो। जो सुझाव श्वास के साथ भीतर जाता है, वह अन्तर्मन में व्याप्त हो जाता है। जो सुझाव रेचन के समय, श्वास निकालते समय दिया जाता है, उसका कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। पूरक के समय सुझाव देकर, श्वास का संयम या कुंभक कर, उस पर ध्यान कर लिया जाता है तो वह बात बहुत गहरे में पहुंच जाती है। वह अवचेतन मन तक पहुंच जाती है। तब हमारा संकल्प बहुत शक्तिशाली और भावना फलवती हो जाती है।

इसलिए यह बात बार-बार कही जाती है कि जब तक साधक शरीर में होने वाली चैतन्य की प्रक्रिया को, शरीर में होने वाले स्पन्दनों की प्रक्रिया को नहीं समझता, तब तक कितने ही बड़े मंत्र की उपासना की जाए, उससे वह लाभ नहीं मिलता, जितना उससे मिलना चाहिए।

नमस्कार महामंत्र बहुत बड़ी चिकित्सा पद्धति है। यह चिकित्सा की आध्यात्मिक पद्धति है। इस संदर्भ में एक प्रश्न उभरता है—क्या बीमारी भी आध्यात्मिक होती है, जिसकी चिकित्सा के लिए आध्यात्मिक चिकित्सा चाहिए ? यह तथ्य है, आध्यात्मिक रोग होते हैं, बीमारियां होती हैं। उनकी चिकित्सा के लिए नमस्कार महामंत्र अनुपम चिकित्सा पद्धति है।

आध्यात्मिक रोग कौन-कौन-से हैं ? सूत्रकृतांग सूत्र में महावीर की स्तुति के प्रसंग में बताया है कि महावीर ने क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चार आध्यात्मिक दोषों को समाप्त कर दिया। ये चारों आध्यात्मिक रोग हैं। जब तक आध्यात्मिक रोग समाप्त नहीं होते तब तक शरीर की बीमारियां भी कभी समाप्त नहीं होतीं। सबसे पहले आध्यात्मिक रोग होता है, फिर प्राणिक रोग होता है, फिर मन का रोग होता है और अन्त में शरीर का रोग होता है। शरीर में बीमारी अभिव्यक्त होती है।

उसका उत्स है अध्यात्म। पहले ही वह अन्तर में जन्म ले लेती है। फिर वह प्राण में आती है, फिर मन में और अन्त में स्थूल शरीर में प्रकट हो जाती है। शरीरशास्त्री का यह मत रहेगा कि सबसे पहले शरीर को स्वस्थ करो। शरीर स्वस्थ होगा तो मन अपने-आप स्वस्थ हो जाएगा। 'स्वस्थ शरीर में बलवान् आत्मा का निवास होता है—यह प्रसिद्ध सूक्त है। हम इसे हजारों बार दोहरा चुके हैं।

अध्यात्मशास्त्री अध्यात्म की साधना करने वाला साधक कहेगा—'सबसे पहले अन्तर के रोग को, अध्यात्म की बीमारी को मिटाओ। जब तक अध्यात्म की बीमारी नहीं मिटेगी तब तक प्राण, मन और शरीर की बीमारियां नष्ट नहीं हो सकती हैं।'

दो पद्धतियां हैं—एक है फूल से जड़ तक पहुंचने की और दूसरी है जड़ से फूल तक पहुंचने की। यह सचाई है कि जब मूल मजबूत नहीं होता, जड़ स्वस्थ नहीं होती, मूल को पूरी प्राणशक्ति नहीं मिलती, तब न फूल होता है, न फल होता है और न और कुछ होता है !

एक बूढ़ा पेड़ गिरने लगा। वह गिड़गिड़ाकर भूमि से बोला—'मां ! तुम सबकी रक्षा करती हो, मुझे गिरने से बचाओ।' भूमि बोली—'बेटा ! अब मैं क्या करूं ? तुमने अपनी जड़ें खोखली कर लीं। मेरे पास अब तुम्हें बचाने का कोई उपाय नहीं है।' पेड़ धराशायी हो गया।

जिसकी जड़ें खोखली हो जाती हैं उससे फूल, फल और पत्तों की आशा नहीं की जा सकती। जड़ के महत्त्व को समझें, उस तक पहुंचें। मैं यह कहना नहीं चाहता कि शरीर में बीमारी होती ही नहीं। कुछ होती हैं। किन्तु अधिकांश बीमारियां आत्मा से आती हैं, प्राण से आती हैं, मन से आती हैं। अल्सर एक बीमारी है। उसका मूल है मन। वह सबसे पहले मन की विकृति में जन्म लेती है। होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति सभी बीमारियों का मूल मन को मानती है। आयुर्वेद और एलोपैथी चिकित्सा पद्धतियां भी कुछेक रोगों का मूल मन को मानती हैं। अति क्रोध और अति आवेश में आदमी मर जाता है, हार्ट फेल हो जाता है। यह शारीरिक अस्वस्थता के कारण होने वाला मरण नहीं है। यह है मन की असाधारण स्थिति से घटित होने वाला मरण।

तुलसीदासजी के रामचरितमानस में एक प्रकरण है, जिसमें यह बतलाया

गया है कि किस प्रकार मानसिक बीमारियां शरीर में प्रकट होती हैं। उनकी भाषा में पित्त है—क्रोध। क्रोध आता है और पित्त कुपित हो जाता है, बीमारी हो जाती है।

हम इस तथ्य को विस्मृत न करें कि बहुत सारी बीमारियों की जड़ें हमारे मन में होती हैं, उससे भी आगे प्राण में होती हैं और उससे भी आगे आवेगों में होती हैं।

हमारे पास तीन साधन हैं—स्मृति, बुद्धि और आवेग (इमोशन)। स्मृति का स्तर बहुत ऊपरी है। उससे गहरे में है बुद्धि का स्तर और उससे भी गहरे में है आवेग का स्तर। आवेग इतने गहरे में जन्मते हैं कि बुद्धि उनसे परे रह जाती है और स्मृति उससे और परे रह जाती है। क्रम यह है—सबसे पहले स्मृति, फिर बुद्धि और फिर आवेग। जब मैं कर्मशास्त्र की भाषावली देखता हूँ तब मुझे लगता है कि इस कथन में बहुत बड़ी सच्चाई प्रकट हुई है। जब क्रोध, मान, माया और लोभ होता है तब कर्म शरीर का निर्माण होता है, तैजस शरीर बनता है, स्थूल शरीर बनता है, प्राणशक्ति बनती है, मन बनता है, बुद्धि बनती है, इन्द्रियां बनती हैं। यदि ये चार आवेग समाप्त हो जाएं तो कुछ भी नहीं बन सकता।

आवेग बहुत गहरे में हैं। ये आवेग आध्यात्मिक बीमारियां हैं। जब तक इन आवेगों की, कषायों की चिकित्सा नहीं की जाती, कषायों का शमन या नाश नहीं किया जाता तब तक न मन की शांति ही प्राप्त हो सकती है और न शरीर ही स्वस्थ हो सकता है।

मैं इसे कभी अस्वीकार नहीं करता कि बाहरी निमित्तों से, कीटाणुओं से कोई बीमारी नहीं होती, कोई कठिनाई नहीं आती। बाहरी निमित्तों से भी रोग होते हैं, कठिनाइयां आती हैं। आदमी चलता है। ठोकर लगती है। गिरते ही हड्डी टूट जाती है। यह निमित्त से उत्पन्न बीमारी है। इसी प्रकार कीटाणुओं से भी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। हम यह भी स्वीकार करें कि अध्यात्म में अनेक रोगों का उत्स है। जब तक मंत्र अध्यात्म तक नहीं पहुंचता, आध्यात्मिक चिकित्सा नहीं हो सकती। मंत्र को प्राण के स्तर तक और आवेग के स्तर तक ले जाना होगा। वहां पहुंचकर मंत्र उन रोगों की चिकित्सा कर देगा। रोग मिट जाएंगे। बीमारी बहुत गहरे में है और मंत्र ऊपरी स्तर पर है तो कुछ लाभ नहीं होगा। रोग तैजस शरीर और

कर्म शरीर मे हैं। हम मंत्र को वहां तक पहुंचाएं। मंत्र की शक्ति उन सभी रोगों को भस्मसात् कर देगी। फिर हम यह नहीं कहेंगे कि मंत्र के द्वारा कुछ नहीं होता।

यदि विधिपूर्वक मंत्र-चिकित्सा पद्धति का प्रयोग किया जाए तो कोई कारण नहीं कि आध्यात्मिक रोग न मिटें। आध्यात्मिक रोग, आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति और उस चिकित्सा पद्धति से संबद्ध प्रयोग—ये सारे तथ्य जब हमें प्राप्त हो जाते हैं तब हमें धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगता है कि कषाय कम हो रहे हैं, क्रोध कम हो रहा है, मान कम हो रहा है। जब हम 'णमो' शब्द का उच्चारण करते हैं तब क्रोध कैसे टिकेगा ? मंत्र-शास्त्रीय दृष्टि से 'णमो' शोधन-बीज है। यह शुद्धि करता है। जो आवेग आते हैं, उन्हें दूर करता है, उनकी शुद्धि करता है। जब शोधन-बीज का हम अभ्यास करते हैं तब शुद्धि कैसे नहीं होगी। जब 'णमो' पद का उच्चारण करते हैं तो पौष्टिकता और शान्ति प्राप्त कैसे नहीं होगी ? वीमारी मिट जाए, इतना ही पर्याप्त नहीं है। वीमार पुष्ट भी होना चाहिए। वीमारी मिट गई और शरीर यदि दुर्बल ही रहा तो कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। कोरी वीमारी मिटे और कमजोरी न मिटे तो वीमारी फिर आ जाती है। डॉक्टर दवा के बाद टॉनिक भी देता है। 'णमो' दवा भी है और टॉनिक भी है। यह आध्यात्मिक वीमारी को मिटाने के साथ-साथ आत्मा को शक्तिशाली भी बनाता है। आत्मा में इतना बल संचित हो जाता है कि फिर आवेग और कषाय आत्मा की परिधि में जाने का साहस ही नहीं करते।

अध्यात्म चिकित्सा के सूत्रों और पूरी प्रक्रिया को समझ लेने के पश्चात् हम इस चर्चा को भी प्रस्तुत करेंगे कि किस प्रकार इस महामंत्र के द्वारा मन और शरीर की वीमारियां भी मिट सकती हैं ? उनका उपचार कैसे किया जा सकता है ?

अध्यात्म की तीन वीमारियां हैं जो कषाय के द्वारा प्रकट होती हैं—**आवरण, विकार और अन्तराय** (अवरोध या प्रतिरोध)। ये तीन वीमारियां हमारे भीतर हैं।

हम सब कुछ जानना चाहते हैं, किन्तु आवरण की वीमारी इतनी बड़ी है कि हम कुछ भी जान नहीं पाते। हम पवित्र रहना चाहते हैं किन्तु मूर्च्छा और विकृति की इतनी बड़ी वीमारी है कि हमारा मन पवित्र नहीं रहता।

हम सब कुछ निर्विघ्नरूप से सम्पन्न करना चाहते हैं, अपनी शक्ति के द्वारा सब कुछ सिद्ध कर लेना चाहते हैं, किन्तु अन्तराय के परमाणु हमारे मार्ग में इतने अवरोध पैदा कर देते हैं कि हम कुछ नहीं कर पाते।

आवरण, विकार और अन्तराय—इन तीन महान् बीमारियों की चिकित्सा के लिए हमने तीन आलंबन लिये हैं—प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा और मंत्र की आराधना। हम प्रेक्षा के द्वारा आवरण को मिटाते हैं, अनुप्रेक्षा के द्वारा मूर्च्छा, मोह और विकार को नष्ट करते हैं और मंत्र की आराधना के द्वारा अन्तराय को मिटाते हैं। प्रश्न होता है कि क्या प्रेक्षा के द्वारा इन तीनों की चिकित्सा नहीं हो सकती ? हो सकती है, किन्तु पूरी नहीं हो सकती, अधूरी होती है। यही बात अनुप्रेक्षा और मंत्र की आराधना के लिए है। ये तीनों विशेष पद्धतियां हैं और विशेष रोगों के लिए हैं, जैसे चिकित्सा के क्षेत्र में जाने वाला चिकित्सा-सम्बन्धी सारा ज्ञान करता है किन्तु किसी एक विषय में निष्णातता भी प्राप्त करता है। वह सभी रोगों का चिकित्सक है, किन्तु एक विशेष रोग की चिकित्सा का विशेषज्ञ है। यही प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा और मंत्र-आराधना के लिए लागू होता है। ये अध्यात्म की प्रत्येक बीमारी की चिकित्सा में काम आ सकते हैं, किन्तु विशेष रोगों की विशेष चिकित्सा है।

कर्मशास्त्र के अनुसार प्रत्येक कर्म बंध के कारण अलग-अलग हैं, कोई व्यक्ति ज्ञान या ज्ञानी पुरुष की अवहेलना करता है तो मुख्यतः उसके ज्ञानावरण कर्म का बंध होता है। प्रश्न हो सकता है कि क्या उसके अन्य कर्म का बंध नहीं होता ? अन्य कर्म भी बंधता है, किन्तु बंध का बहुत बड़ा भाग ज्ञान के आवरण में चला जाता है, दूसरे कर्मों को थोड़ा-थोड़ा हिस्सा मिलता है। जिस प्रकार का हमारा आचरण होता है उससे सम्बद्ध कर्म का बड़ा बंध होता है और थोड़ा-थोड़ा बंध अन्य कर्मों का भी होता है। उसे तोड़ने के लिए भी हमें इसी प्रक्रिया से गुजरना होगा। जिस कर्म विशेष को हमें तोड़ना है, उस कर्म को बांधने के जो उपाय हैं उनके प्रतिकूल उपायों से ही हम उसे तोड़ सकते हैं। अन्तराय को तोड़ने के लिए, शक्ति का विकास करने के लिए, ऊर्जा का विकास करने के लिए, मंत्र की आराधना बहुत उपयोगी होती है। इसीलिए हम भावना, मंत्र, अनुप्रेक्षा और प्रेक्षा—इस समन्वित पद्धति का उपयोग करते हैं। जो आदमी रुग्ण होता है, उसकी चेतना, उसकी स्वस्थता, उसकी निर्विकारता, उसकी शक्ति पूरा

काम नहीं करती। हम इस प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति, जिसमें अनुप्रेक्षा और मंत्र-आराधना भी सम्मिलित है, के द्वारा निर्विकारता, वीतरागता आनन्द और शक्ति का समन्वित विकास करना चाहते हैं। यही हमारा प्रमुख उद्देश्य है।

८. मानसिक स्वास्थ्य और नमस्कार महामंत्र

- हृदय प्राण का केन्द्र, गुदा अपान का केन्द्र, नाभि समान का केन्द्र, कंठ उदान का केन्द्र, व्यान सर्व शरीरगत—ये सब दर्शनकेन्द्र से परिचालित होते हैं। इन केन्द्रों को सक्रिय बनाए रखना मंत्र-चिकित्सा का उद्देश्य है।
- शब्द मनोभावों का वाहन। छह चैतन्य केन्द्रों में उसकी गति होती है। वह अपान से प्रस्फुटित होती है।
- दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र मानस जप के उच्चारण के उद्भव-स्थान।



दो प्रकार के सिद्धांत हैं। एक है वर्जना का सिद्धांत और दूसरा है साधना का सिद्धान्त। वर्जना का सिद्धांत निषेधात्मक होता है, नेगेटिव होता है। साधना का सिद्धांत विधायक होता है, क्रियात्मक होता है, पॉजिटिव होता है। वर्जना का सिद्धांत मन को कम पकड़ता है। साधना के सिद्धांत के पीछे एक प्रक्रिया जुड़ी रहती है, एक अभ्यास-क्रम जुड़ा होता है। वह मन को पकड़ता है। जैसे-जैसे क्रम आगे बढ़ता है, साधना स्वयं जीवन में घटित होने लगती है। 'बुरे विचार मत करो'—यह वर्जना की बात करने मात्र से कोई व्यक्ति बुरे विचार भरना छोड़ देता है, यह संभावना करना बहुत कठिन बात है। किन्तु एक प्रक्रिया या एक अभ्यास का क्रम किसी व्यक्ति को दे देने पर वह बुरे विचार से छुटकारा पा सकता है।

मंत्र-साधना का एक उपक्रम है। यह साधना का सिद्धांत है, विकल्प है। हमारे मन में नाना प्रकार के विकल्प उठते रहते हैं और हम उनसे

प्रभावित भी होते हैं। हमारे जीवन का सारा तंत्र प्रभावित होता है। जब हम मन को विकल्प दे देते हैं, एक विशाल, उदात्त और पवित्र मंत्र दे देते हैं, तब सारे विकल्प क्षीण हो जाते हैं और मंत्र का विकल्प पुष्ट होने लगता है। मां बच्चे को मिट्टी खाने से रोकती है, बच्चा नहीं मानता। मां उसके हाथ में वंशलोचन दे देती है। बच्चा मिट्टी खाना छोड़ देता है। यह एक विकल्प है। आचरण के विषय में भी यही बात है। जब तक कोई पवित्र, उदात्त विकल्प प्रस्तुत नहीं किया जाता तब तक पहले वाला आचरण, पहले की धारणा नहीं छूट पाती।

मंत्र की आराधना के द्वारा, मंत्र की चिकित्सा के द्वारा मन को स्वस्थ बनाने का पहला उपाय है—मन को सुन्दर विकल्प देना, उसे एक विधायक मार्ग दे देना और उससे मन के भटकाव को सीमित कर देना।

दूसरा उपाय है—मन को संक्लेश से शून्य कर देना। मन में अनेक संक्लेश होते हैं। जब संक्लेश होते हैं तब सब सताते हैं। जब मन का संक्लेश दूर हो जाता है तब उस व्यक्ति को कोई नहीं सताता।

नैव देवा न गन्धर्वा, न पिशाचा न राक्षसाः।

न चान्ये स्वयमक्लिष्टं, उपक्लिश्यन्ति मानवम्।।

—‘देव, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस या और कोई भी दूसरे, उस व्यक्ति को नहीं सताते, जिसका मन स्वयं क्लिष्ट नहीं होता, क्लेशयुक्त नहीं होता। उसी व्यक्ति को वे सताते हैं जिसका मन संक्लेश से भरा होता है।

आकांक्षा, मिथ्यादृष्टिकोण, प्रमाद, कषाय, मन की चंचलता, वाणी की चंचलता और शरीर की चंचलता—ये आंतरिक संक्लेश हैं। जब ये संक्लेश होते हैं, तब बाहर का आक्रमण होता है। जब मन में कोई संक्लेश नहीं होता, व्यक्ति अपने-आप में सुस्थिर होता है, व्यक्ति निष्कषाय और वीतराग होता है, अप्रमत्त और जागरूक होता है, उस व्यक्ति पर कोई आक्रमण नहीं कर पाता।

आगमों में बार-बार कहा गया है—‘प्रमाद मत करो। प्रमत्त मत बनो।’ इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह है कि जो प्रमाद करता है, उसे ही प्रेतात्माएं सताती हैं। जो व्यक्ति सदा अप्रमत्त रहता है, जागरूक रहता है उसे कोई नहीं सताता।

मुनि सुदर्शन भगवान् पार्श्व की परंपरा के शक्तिसंपन्न मुनि थे। एक

कापालिक अपनी महाशक्ति के द्वारा उन्हें भस्म कर देना चाहता था। उसने शक्ति का प्रयोग किया। मुनि सुदर्शन को शक्ति का भान हो गया। वे तत्काल कायोत्सर्ग में स्थित हो गए। उन्होंने अपनी पवित्र लेश्याओं द्वारा और अपनी जागरूकता के द्वारा अपने आभामंडल को इतना शक्तिशाली बना दिया कि वह महाशक्ति उस आभा-वलय को भेदकर मुनि सुदर्शन तक नहीं पहुंच सकी। उसने लौटकर प्रयोक्ता को ही जला डाला।

जब अप्रमाद और वीतरागभाव जागृत होता है तब कोई भी उस व्यक्ति को सता नहीं सकता।

मंत्र मन के संक्लेशों को दूर करने का बहुत बड़ा माध्यम है। इसीलिए मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह चिकित्सा बन जाता है। जब हम अर्हत् का ध्यान करते हैं तब मन के संक्लेश दूर होते हैं। जब हम अर्हत् को अपने में अनुभव करते हैं तब शरीर का कण-कण वज्रमय बनने लग जाता है, एक वज्रमय कवच तैयार हो जाता है।

दुर्योधन गांधारी के सामने खड़ा हुआ। उसने देखा और वज्रमय बन गया। दूसरे की वेधक दृष्टि से प्रस्फुट होने वाली तेजोलेश्या के द्वारा जब दूसरे का शरीर वज्रमय बन जाता है तब शरीर के कण-कण पर ध्यान करने से वह वज्रमय क्यों नहीं बनेगा ? हम अति कल्पना न करें कि ५-१० दिनों के अभ्यास से यह वैसा बन जाएगा। किन्तु मंत्र का अभ्यास यदि विधिपूर्वक चले और वह लंबे समय तक चलता रहे तो यह संभव है कि शरीर का कण-कण इतना सक्रिय और जागृत हो सकता है कि बाहरी शक्ति फिर उसे प्रभावित नहीं कर सकती। फिर मन के अस्वस्थ होने की बात ही समाप्त हो जाती है।

मंत्र-साधना में प्राण का बहुत बड़ा महत्त्व है। जब तक हम प्राणशक्ति को नहीं समझते तब तक मंत्र की वास्तविकता भी हमारी समझ में नहीं आ सकती। हमारा समूचा जीवन-तंत्र प्राणशक्ति के द्वारा संचालित होता है। तैजस शरीर प्राणशक्ति या जैविक विद्युत् का बड़ा खजाना है। प्राणधारा उस विद्युत् को समूचे शरीर में फैलाती है। प्राणधारा तैजस शरीर से निकलती है। वह प्राणधारा दस भागों में विभक्त है। प्राण एक ही है। प्राण दो नहीं हो सकते। किन्तु स्थान-भेद और कार्य-भेद के आधार पर एक ही प्राण दस भागों में बंट जाता है। दस स्थान हैं जहां से प्राण

भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाता है। उसके पांच स्थान हैं। पांच इन्द्रियां—श्रोत्र इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, रस इन्द्रिय और स्पर्शन इन्द्रिय। दूसरे पांच स्थान हैं—मन, वचन, शरीर, श्वास और आयुष्य (जीवनी शक्ति)। ये दस स्थान हैं, दस प्राण हैं। तैजस शरीर से प्रभावित होने वाली यह प्राणधारा शरीर के इन दस मूल स्थानों को सक्रिय बनाती है, उन्हें परिचालित करती है। इनके कार्य भिन्न-भिन्न हैं और स्थान भिन्न-भिन्न हैं। हम दस प्राण से इन्हें पहचानते हैं। वास्तव में प्राण एक ही होता है।

आयुर्वेद में प्राण को पांच भागों में विभक्त किया है—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

प्राण का मुख्य स्थान है हृदय (आनन्द केन्द्र)। अपान का मुख्य स्थान है गुदा (शक्ति केन्द्र)। समान का मुख्य स्थान है नाभि (तैजस केन्द्र)। उदान का मुख्य स्थान है कण्ठ (विशुद्धि केन्द्र)। व्यान समूचे शरीर में व्याप्त है, किन्तु वह परिचालित होता है दर्शनकेन्द्र के द्वारा।

शरीर के सभी मुख्य केन्द्र मस्तिष्क में हैं। ये सक्रिय होते हैं प्राण के द्वारा। प्राण सूर्य की ऊष्मा को लेता है और चक्षु को सक्रिय बनाता है। समान प्राणधारा मन को सक्रिय बनाती है। अपान प्राणधारा हमारे समूचे शक्ति-तंत्र को सक्रिय बनाती है। शक्ति का मुख्य स्थान है—अपान का स्थान, नाभि से शक्ति केन्द्र तक का स्थान। व्यान प्राण हमारी श्रोतृ-शक्ति को सक्रिय बनाता है। उदान प्राण कंठ से ऊपर की सारी शक्ति को सक्रिय करता है।

नमस्कार महामंत्र की आराधना जब प्राणशक्ति के साथ जुड़ जाती है तब हमारा मन इतना स्वस्थ होता है कि सामान्यतः उस स्वास्थ्य की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। वह मन स्वस्थ होता है, जिसमें प्रसन्नता का अजस्र स्रोत फूट पड़ता है, जिसमें निर्ममत्व भाव का विकास है, जिसमें बुरे विचार नहीं आते, जिसमें उत्तेजना नहीं आती, जिसको वासना नहीं सताती। महर्षि चरक ने स्वास्थ्य के लिए कुछ मानदंड स्थापित किए हैं, उनमें जितेन्द्रियता और मन की प्रसन्नता को भी माना है। शारीरिक स्वास्थ्य के कुछ मानदंड हैं और ये दो मानदंड मानसिक स्वास्थ्य के हैं। उन्होंने कहा है :

समदोषः समाग्निश्च, समधातुमलक्रियः ।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः, स्वस्थ इत्यभिधीयते । ।

शारीरिक दृष्टि से स्वास्थ्य का विचार करने वाला व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य को नकार नहीं सकता। जिसका मन स्वस्थ नहीं होता उसका शरीर स्वस्थ नहीं हो सकता। इसीलिए मानसिक स्वास्थ्य के लक्षणों को शारीरिक स्वास्थ्य के साथ जोड़ा है।

नमस्कार महामंत्र की आराधना अनेक रूपों में की जाती है। उसके पांच पद और पैंतीस अक्षर हैं। इसकी आराधना बीजाक्षरों के साथ भी की जाती है और बिना बीजाक्षरों के, केवल मंत्राक्षरों के साथ भी की जाती है। इसकी आराधना—‘एसो पंच णमोक्कारो, सब्वावप्पणासणो मंगलाणं च सब्बेसिं, पढमं हवइ मंगलं’—इस चूलिका पद के साथ भी की जाती है और इस चूलिका पद के बिना भी की जाती है। नमस्कार महामंत्र की आराधना पांच पदों के संक्षिप्त रूप ‘ॐ’ में भी की जाती है। ॐ में पांचों पद सन्निहित हैं। अर्हत् का ‘अ’, अशरीरी (सिद्ध) का ‘अ’, आचार्य का ‘आ’, उपाध्याय का ‘उ’ और मुनि का ‘म्’—इन आदि अक्षरों से ॐ निष्पन्न होता है। (अ+अ+अ=आ+उ=ओ+म्=ओम्) ॐ पूर्ण परमेष्ठी का वाचक है। महामंत्र की आराधना हींकार के रूप में भी की जाती है। पांचों पद ‘हींकार’ में समा जाते हैं। महामंत्र की आराधना पांच पदों के आदि अक्षर—अ, सि, आ, उ, सा, से निष्पन्न पंचाक्षरी मंत्र ‘अ सि आ उ सा’ के रूप में भी की जाती है। यह पंचाक्षरी मंत्र बहुत प्रभावशाली है। इस महामंत्र की आराधना ‘अर्ह’ के रूप में भी की जाती है।

इस प्रकार एक ही महामंत्र की आराधना भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में की जाती है। ॐ णमो अरहंताणं, ॐ णमो सिद्धाणं, ॐ हीं णमो अरहंताणं, ॐ हीं णमो सिद्धाणं, आदि-आदि।

आज हमारे सामने प्रश्न है मन के स्वास्थ्य का। मन का स्वास्थ्य जुड़ा हुआ है प्राणधारा के साथ। (जब प्राण को सक्रिय और निर्मल बनाना है तो नमस्कार महामंत्र की साधना प्राण के पांच बीजों के साथ करनी होगी। प्राणधारा के पांच बीज हैं—यै, पैं, वैं, रैं, लैं। इन बीजाक्षरों के साथ महामंत्र की आराधना की जाती है।

मंत्र के तीन तत्त्व हैं—शब्द, संकल्प और साधना। मंत्र का पहला तत्त्व

है—शब्द। शब्द मन के भावों को वहन करता है। मन के भाव शब्द के वाहन पर चढ़कर यात्रा करते हैं। कोई विचार-संप्रेषण (टेलीपेथी) का प्रयोग करे, कोई सजेशन या ऑटो सजेशन का प्रयोग करे, उसे सबसे पहले ध्वनि का, शब्द का सहारा लेना ही पड़ता है। वह व्यक्ति अपने मन के भावों को तेज ध्वनि में उच्चारित करता है। जोर-जोर से बोलता है। ध्वनि की तरंगें तेज गति से प्रवाहित होती हैं। फिर वह उच्चारण को मध्यम करता है, धीरे-धीरे करता है, मंद कर देता है। पहले होंठ, दांत, कंठ सब अधिक सक्रिय थे, वे मंद हो जाते हैं, ध्वनि मंद हो जाती है। होंठ तक आवाज पहुंचती है पर बाहर नहीं निकलती। जोर से बोलना या मंद स्वर में बोलना—दोनों कंठ के प्रयत्न हैं। ये स्वर-यंत्र के प्रयत्न हैं। जहां कंठ का प्रयत्न होता है, वह शक्तिशाली तो होता है किन्तु बहुत शक्तिशाली नहीं होता। उसका परिणाम आता है किन्तु वह परिणाम नहीं आता, जितना हम मंत्र से उम्मीद करते हैं। हम मानते हैं कि मंत्र से यह हो सकता है, वह हो सकता है। वैसा कंठध्वनि का परिणाम नहीं आता, तब निराशा आती है और मंत्र के प्रति संशय हो जाता है। मंत्र की वास्तविक परिणति या मूर्धन्य परिणाम तब आता है जब कंठ की क्रिया समाप्त हो जाती है और मंत्र हमारे दर्शन-केन्द्र में पहुंच जाता है। यह मानसिक क्रिया है। जब मंत्र की मानसिक क्रिया होती है, मानसिक जप होता है तब न कंठ की क्रिया होती है, न जीभ हिलती है, न होंठ और न दांत हिलते हैं। स्वर-यंत्र का कोई प्रकंपन नहीं होता। मन ज्योतिकेन्द्र में केन्द्रित हो जाता है। जो व्यक्ति मंत्र का मानसिक अभ्यास करना चाहें, वे अपनी आंखों की कीकी को थोड़ा ऊपर उठाए, भृकुटि को भी ऊपर उठाएँ और मन की पूरी शक्ति को ज्योतिकेन्द्र, तिलक के स्थान पर केन्द्रित करें और इसी स्थान से मंत्र का जप चले। उच्चारण नहीं, केवल मंत्र का दर्शन, मंत्र का साक्षात्कार, मंत्र का प्रत्यक्षीकरण। इस स्थिति में मंत्र की आराधना से वह सब कुछ उपलब्ध होता है जो उसका विधान है। मंत्र इस भूमिका तक पहुंचकर ही कृतकृत्य होता है। यह उसके आरोहण की भूमिका है।

मानसिक जप की भूमिका उपलब्ध हुए बिना हम मन की स्वस्थता की भी पूरी परिकल्पना नहीं कर सकते। मन का स्वास्थ्य हमारे चैतन्यकेन्द्रों की सक्रियता पर निर्भर है। जब सारे चैतन्यकेन्द्र—शक्तिकेन्द्र, स्वास्थ्यकेन्द्र,

तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र, प्राणकेन्द्र, दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र— सक्रिय हो जाते हैं तब हमारी शक्ति का स्रोत फूटता है और मन शक्तिशाली बन जाता है। अन्यथा मन शक्तिशाली नहीं बनता। मन पर निरन्तर आघात और प्रतिघात होते रहते हैं, सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक वातावरण में ऐसी घटनाएं घटित होती रहती हैं जिनसे मन आहत होता है, प्रतिहत होता है। इतने आघात-प्रतिघात के बीच रहता हुआ मन स्वस्थ कैसे हो सकता है ? मन को आघातों से बचाने पर ही वह शक्तिशाली और स्वस्थ रह सकता है। अन्यथा मानसिक स्वास्थ्य की बात कोरी कल्पनामात्र रह जाती है।

मन पर होने वाले आघातों से बचने के लिए एक ही उपाय है कि साधक अपने चैतन्यकेन्द्रों को सक्रिय करे। चैतन्यकेन्द्रों को सक्रिय करने की भी प्रक्रिया है। तैजसकेन्द्र पर ध्यान किया, मन का प्रकाश नाभि से सुषुम्ना तक, पृष्ठभाग तक फैलाया। इससे मन की एकाग्रता सधेगी और सारा तैजसकेन्द्र सक्रिय हो जायेगा। जहां मन जाता है, वहां प्राण का प्रवाह भी जाता है। जिस स्थान पर मन केन्द्रित होता है, प्राण उस ओर दौड़ने लगता है। जब मन को प्राण का पूरा सिंचन मिलता है और शरीर के उस भाग के सारे अवयवों को, अणुओं और परमाणुओं को प्राण और मन—दोनों का सिंचन मिलता है तब वे सारे सक्रिय हो जाते हैं। जो कण सोये हुए हैं, वे जाग जाते हैं। शक्ति बढ़ जाती है। यहां हम अति कल्पना न करें कि दो-चार-दस दिन में चैतन्यकेन्द्रों पर ध्यान करने से उनकी सक्रियता बढ़ जायेगी। दस दिन में कुछ अवश्य होगा पर इतना ही पर्याप्त नहीं है।

कोई व्यक्ति दर्शनकेन्द्र पर ध्यान करता है। उसे वहां स्पन्दनों का स्पष्ट अनुभव होता है, उसे वहां प्रकाश दीखने लगता है, तब मानना चाहिए कि वह केन्द्र सक्रिय हुआ है। किन्तु एक चैतन्यकेन्द्र के सक्रिय होने पर सारे चैतन्यकेन्द्र सक्रिय नहीं हो जाते। दूसरे चैतन्यकेन्द्र निष्क्रिय पड़े रहते हैं। यह कसौटी है कि जहां स्पन्दनों का अनुभव हो, प्रकाश दीखे, वे चैतन्यकेन्द्र सक्रिय हैं। जहां कुछ भी अनुभव नहीं होता, वे चैतन्यकेन्द्र निष्क्रिय हैं। जो सक्रिय हैं, उन्हें और अधिक सक्रिय बनाना और जो निष्क्रिय हैं, उन्हें सक्रिय बनाना, यह मंत्र-साधना के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। मंत्र के

द्वारा ऐसा किया जा सकता है। मन के प्रकाश से उन केन्द्रों को प्रकाशित कर ऐसा किया जा सकता है। जब तक हमारे चैतन्यकेन्द्र सक्रिय नहीं होंगे, जब तक हमारी शक्ति के मूल स्रोत या प्राणधारा को स्वीकार करने वाले केन्द्र अपना काम नहीं करेंगे तब तक विद्युत् का पूरा प्रवाह हमें उपलब्ध नहीं होगा। ऐसी स्थिति में मन भी शक्तिशाली नहीं बनेगा। मन को शक्तिशाली बनाने के लिए चैतन्यकेन्द्रों पर ध्यान और चैतन्यकेन्द्रों में मंत्र की आराधना—दोनों बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं।

अपान प्राणधारा से वाणी प्रस्फुटित होती है अथवा शक्तिकेन्द्र से वाक् प्रस्फुटित होती है। वह ध्वनित नहीं होती; सुनाई नहीं देती, उच्चरित नहीं होती किन्तु उसका पहला प्रस्फुटन शक्तिकेन्द्र से होता है, अपान प्राण की मर्यादा में होता है। बीज अंकुरित नहीं होता, किन्तु उसका प्रस्फुटन हो जाता है। मंत्र की उपासना करने वाले व्यक्ति सबसे पहले अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं—शक्तिकेन्द्र पर। वे अपने मन का नियोजन शक्तिकेन्द्र पर करते हैं। जब शक्तिकेन्द्र से वाक् का, मंत्रों के शब्दों का प्रस्फुटन शुरू होता है तब वह आरोहण करते-करते स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र, प्राणकेन्द्र, दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र तक पहुंचता है और विशुद्धिकेन्द्र तक आते-आते शब्द की सीमा समाप्त हो जाती है। आगे वह मंत्र प्राण की सीमा में, मन की सीमा में चला जाता है, सक्रियता उत्पन्न करता है और सारे तंत्र को शक्तिशाली बना देता है।

मंत्र का पहला तत्त्व है—शब्द और शब्द से अशब्द। शब्द अपने स्वरूप को छोड़कर प्राण में विलीन हो जाता है, मन में विलीन हो जाता है तब वह अशब्द बन जाता है।

मंत्र का दूसरा तत्त्व है—संकल्प। मंत्र-साधक की संकल्प-शक्ति दृढ़ होनी चाहिए। यदि संकल्प-शक्ति शिथिल है, दुर्बल है तो मंत्र की उपासना उतना फल नहीं दे सकती, जितने फल की अपेक्षा की जाती है। मंत्र साधक में विश्वास की दृढ़ता होनी चाहिए। उसकी श्रद्धा और इच्छाशक्ति गहरी होनी चाहिए। उसका आत्म-विश्वास जागृत होना चाहिए। उसमें यह भावना होनी चाहिए, आत्म-विश्वास होना चाहिए कि जो कुछ वह कर रहा है, अवश्य ही फलदायी होगा। वह अपने अनुष्ठान में निश्चित ही सफल होगा। सफलता में काल की अवाधि का अन्तर आ सकता है। किसी को

एक महीने में, किसी को दो-चार महीनों में और किसी को वर्ष-भर बाद ही सफलता मिले, किसी व्यक्ति को पूरी शक्ति के साथ मंत्र का अनुष्ठान करने पर ही सफलता मिलती है और किसी को कम शक्ति लगाने पर भी सफलता मिल जाती है। इसके अनेक कारण हैं। किन्तु प्रत्येक मंत्र-साधक में यह आत्मविश्वास और संकल्प होना ही चाहिए कि 'मैं अपने अनुष्ठान में अवश्य ही सफल होऊंगा।'

कुछ व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि यहां मृग बहुत हैं, बीज क्यों बोएं ? मृग खेती खा जाएंगे। यहां चूहे बहुत हैं, बीज क्यों बोएं ? चूहे खेती खा जाएंगे। चोर बहुत हैं, धन क्यों कमाएं ? चोर चोरी कर ले जाएंगे। जो व्यक्ति इन विकल्पों और संदेहों के वशवर्ती होकर खेती नहीं करते, व्यापार नहीं करते, वे कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाते। उन्होंने पहले से ही अनुपलब्धि का मार्ग चुन रखा है। खेती करने वाला पूरे आत्मविश्वास के साथ खेती करता है कि अनाज अवश्य ही होगा। कभी अनाज न भी हो, पर उसका आत्मविश्वास यही रहता है कि अनाज होगा। असफलता कोई कठिनाई नहीं है, कठिनाई है आत्मविश्वास का न होना। असफलता सदा नहीं होती। आत्मविश्वास होता है तो असफलता सफलता में परिवर्तित भी हो सकती है। जो एक बार असफल रहता है वह दूसरी बार सफल भी हो सकता है। किन्तु जो संदेहों के जाल में फंसकर सफलता की ओर कदम ही नहीं बढ़ाता, वह जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। सफलता की मूल कुंजी है—आत्मविश्वास। जिस व्यक्ति में गहरा आत्मविश्वास होता है वह व्यक्ति अपनी आराधाना में सफल हो जाता है।

मंत्र का तीसरा तत्त्व है—साधना। शब्द भी हैं, आत्मविश्वास भी है किन्तु साधना के अभाव में मंत्र फलदायी नहीं हो सकता। जब तक मंत्र-साधक आरोहण करते-करते मंत्र को प्राणमय न बना दे, तब तक वह सतत साधना करता रहे। वह निरंतरता को न तोड़े। जब तक वह हिमालय के उच्चतम शिखर पर न पहुंच जाए तब तक वह आरोहण के क्रम को न छोड़े, उसमें शिथिलता न आने दे। मन शिथिल होते ही आरोहण का प्रयत्न छूट जाता है। तब सफल होने की बात ही प्राप्त नहीं होती। साधना में निरंतरता और दीर्घकालिता—दोनों अपेक्षित हैं। अभ्यास को प्रतिदिन दोहराना चाहिए। आज आपने ऊर्जा का एक वातावरण तैयार किया।

कल उस प्रयत्न को छोड़ देते हैं तो वह ऊर्जा का वायुमंडल स्वतः शिथिल हो जाता है। एक मंत्र-साधक तीस दिन तक मंत्र की आराधना करता है और इकतीसवें दिन वह उसे छोड़ देता है और फिर बत्तीसवें दिन उसे प्रारंभ करता है तो मंत्र-शास्त्र कहता है कि उस साधक की मंत्र-साधना का वह पहला दिन ही मानना चाहिए। वहां से फिर गणना प्रारंभ करनी चाहिए। तीस दिन की साधना समाप्त। अब इकतीसवां दिन पहला दिन बन जाता है। इसलिए निरंतरता होनी चाहिए। एक दिन भी बीच में न टूटे।

साधना का काल दीर्घ होना चाहिए, लंबा होना चाहिए, ऐसा नहीं हो कि काल छोटा हो। दीर्घकाल का अर्थ है जब तक मंत्र का जागरण न हो जाए, मंत्र वीर्यवान् न बन जाए, मन चैतन्य न हो जाए, जो मंत्र शब्दमय था, वह एक ज्योति के रूप में प्रकट न हो जाए, तब तक उसकी साधना चलती रहे। जब तक ज्योतिकेन्द्र में मंत्र प्रकाशमय, ज्योतिर्मय और तेजमय न बन जाए तब तक साधना होनी चाहिए, तब तक आरोहण होना चाहिए। यही है दीर्घकालिता।

जब तक मंत्र के तीनों तत्त्वों—शब्द, संकल्पशक्ति और साधना—का समुचित योग नहीं होता तब तक मंत्रसाधक सत्य-संकल्प नहीं होता। सत्य-संकल्प का अर्थ है—संकल्प की सिद्धि कर लेना, संकल्प का सफल हो जाना; संकल्प का यथार्थ बन जाना। कल्पना से संकल्प और संकल्प से यथार्थ। संकल्प और यथार्थ की दूरी समाप्त हो जाए।

जिस मंत्र के द्वारा जो कार्य संभव होता है, उसका संकल्प किया और कालान्तर में वह यथार्थ बनकर प्रत्यक्ष हो गया—इस भूमिका में पहुंचकर ही मंत्र-चिकित्सा के द्वारा मन की बीमारियों को मिटाया जा सकता है। इस स्थिति में ही मन के संक्लेशों की चिकित्सा की जा सकती है, वे संक्लेश मिट सकते हैं। मन तब पूरा स्वस्थ बन जाता है। जब व्यक्ति का मन स्वस्थ होता है तब उसमें धर्म का अवतरण होने लगता है। यह सहज होता है, विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। उस समय ऐसा लगता है कि किसी दिव्य-शक्ति का प्रकाश कोई प्रसाद या अनुग्रह अपने-आप बरस रहा है और आत्मा में प्रवेश कर रहा है। इसे हम किसी नाम से पुकारें। ईश्वर के कर्तृत्व में विश्वास करने वाला मान ले कि ईश्वर का प्रसाद बरस रहा है, अनुग्रह बरस रहा है। अपने आत्म-कर्तृत्व में विश्वास करने वाला मान

ले कि आत्मा का जागरण हो रहा है, चैतन्यकेन्द्रों की सारी शक्तियां पूरे शरीर में अवतरित हो रही हैं।

जब मन स्वस्थ, चेतना जागृत; आघात और प्रतिघात का प्रभाव समाप्त हो जाता है तब साधक सभी प्रकार की परिस्थितियों में संतुलित रहेगा। परिस्थितियों का प्रभाव उस तक पहुंचेगा ही नहीं। समस्या अपने स्थान पर खड़ी रहेगी, व्यक्ति का स्पर्श नहीं कर पाएगी। उस व्यक्ति को यह स्पष्ट दर्शन हो जाएगा कि समस्या यह है और समाधान यह है। समस्याओं से आक्रान्त होने वाले व्यक्ति, समस्याओं के नीचे दब जाने वाले व्यक्ति, समस्याओं का सही समाधान नहीं पा सकते। समस्याओं का समाधान वे ही व्यक्ति पा सकते हैं, जो समस्याओं को तीसरे व्यक्ति को भांति सामने खड़ा देखते हैं। यह रहा मैं, यह है मेरा मन और यह समस्या। समस्याएं दरवाजे के बाहर खड़ी हैं, मैं भीतर हूँ। इनका समाधान यह है। ऐसे व्यक्ति ही समस्याओं का समाधान दे सकते हैं। चोर और डकैत को घर में घुसने दें और चोरी, डकैती न हो यह कैसे संभव हो सकता है ? समस्याओं से मन आक्रान्त हो और वह अस्वस्थ न हो, यह कैसे संभव हो सकता है ? हम समस्याओं से कहें—‘आओ, यह रहा मन और यह रही मन की सारी संपदा। तुम उस पर छा जाओ।’ ऐसी निमंत्रणा में समाधान कैसे संभव हो सकता है ? समस्याओं का समाधान तभी संभव लगता है जब हम उनको मन के भीतर प्रवेश न करने दें। समस्या समस्या के स्थान पर खड़ी रहे तो समाधान प्राप्त हो जाता है। समस्या समस्या के स्थान पर, मन मन के स्थान पर और समाधान समाधान के स्थान पर। यह तभी संभव है जब हमारे चैतन्यकेन्द्र जागृत हो जाएं, सक्रिय हो जाएं। प्रेक्षा-ध्यान के द्वारा यह संभव है। चैतन्यकेन्द्रों को जागृत कर हम मन पर ऐसा कवच तैयार कर दें, जिससे बाहर का कुछ भी प्रवेश न कर सके।

६. शारीरिक स्वास्थ्य और नमस्कार महामंत्र

- पीले रंग का ध्यान मस्तिष्क में। बुद्धि का विकास होता है।
- सुनहरे रंग का ध्यान आनन्दकेन्द्र में। समस्या का समाधान होता है।
- रंग की कमी का प्रभाव—
 - नीले रंग की कमी से क्रोध अधिक।
 - लाल रंग की कमी से आलस्य अधिक।

•

हमारा यह संसार रहस्यों से भरा पड़ा है। इसमें अनन्त रहस्य छिपे पड़े हैं। वे ही व्यक्ति कुछ करने में सफल हो सकते हैं जो रहस्यों की खोज करते हैं। जिन लोगों ने रहस्यों को खोजा, उन लोगों ने संसार को बहुत बड़ी देन दी, संसार को आगे बढ़ाया, विकास क्रम का आरोहण किया। आज का विज्ञान इसीलिए सफल हो रहा है कि वह प्रकृति के गूढ़तम रहस्यों की खोज में संलग्न है। खोज के द्वार बंद नहीं हैं। रहस्यों को खोजने के नये-नये प्रयत्न चल रहे हैं। अध्यात्म के आचार्यों ने भी अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों का अनुसंधान किया इसीलिए उन्होंने ऐसे नए-नए मार्ग सुझाए, जो सचमुच आश्चर्यचकित करने वाले हैं। किन्तु एक अन्तर मैं देखता हूं। वैज्ञानिक अनुसंधान आज भी चालू हैं, किन्तु अध्यात्म के अनुसंधान अतीत के गर्त में छिप गए। अनुसंधान की प्रवृत्ति छूट गई। दरवाजा बंद हो गया। इसलिए जो नये तथ्य सामने आने चाहिए थे, वे बंद हो गए। जब मैं विज्ञान और अध्यात्म को समानान्तर दृष्टि से देखता हूं तब पाता हूं कि आज जो बहुत-सारे तथ्य खोजे जा रहे हैं, वे अध्यात्म के आचार्यों ने पहले

ही खोज लिये थे। एक छोटी-सी चर्चा करूं। जैन आगमों में २८ लब्धियों की चर्चा है। उनमें एक है—**संभिन्नस्रोतोलब्धि**। जिस व्यक्ति को वह लब्धि उपलब्ध हो जाती है, वह व्यक्ति किसी भी इन्द्रिय से किसी भी इन्द्रिय का काम ले सकता है। आंख से देख सकता है, आंख से सुन सकता है, आंख से घ्राण-बोध कर सकता है। इसी प्रकार ये सारे काम कान या जीभ से कर सकता है। एक इन्द्रिय का संवेदन दूसरी इन्द्रिय का संवेदन पकड़ सकता है। अभी-अभी मैंने पढ़ा है कि आस्ट्रेलिया के एक वैज्ञानिक डॉ० बेरी रिचर्डसन ने एक एलेक्ट्रॉनिक यंत्र का आविष्कार किया है, जिससे बहुरा व्यक्ति त्वचा से सुन सकता है। यह **संभिन्नस्रोतोलब्धि** का एक उदाहरण है। इस लब्धि की जो प्राचीन व्याख्या थी, वह केवल ग्रन्थों तक ही सीमित रह गई थी, हमारे अनुभव से परे हो गई थी, उसका व्याख्या-सूत्र हमें वैज्ञानिक स्तर पर आज उपलब्ध हो गया। वैज्ञानिकों ने इस नये यंत्र की उपयोगिता के विषय में कहा कि इस यंत्र का विकास होने पर दुनिया में कोई बहुरा नहीं रहेगा।

जैसे-जैसे विश्व के रहस्यों में हम गहरी डुबकियां लेते हैं, वैसे-वैसे नये-नये रहस्य हमारे सामने उद्घाटित होते हैं और प्रकृति के, पौद्गलिक जगत् के सारे नियम हमारी ज्ञान की सीमा में आ जाते हैं।

एक प्रश्न है कि नमस्कार महामंत्र की आराधना के साथ वर्णों का समायोजन क्यों ? रंग का इसके साथ क्या सम्बन्ध है ? पांच पदों के क्रमशः पांच वर्ण हैं—श्वेत, लाल, पीला, नीला या हरा और कस्तूरी जैसा काला। एक-एक पद का एक-एक रंग। यह क्यों ?

पहले यह चर्चा कर चुके हैं कि नमस्कार महामंत्र की आराधना अनेक रूपों में की जाती है। उसकी आराधना केवल पांच पदों के रूप में भी की जाती है, बीजाक्षरों के साथ भी की जाती है; एक-एक पद की एक-एक चैतन्य-केन्द्र में भी उपासना की जाती है और रंगों के साथ भी की जाती है।

अध्यात्म साधना का उद्देश्य है—**आत्म-जागरण**। आत्म जागरण का अर्थ है—**चैतन्य का जागरण, आनन्द का जागरण, शक्ति का जागरण, अपने परमात्म स्वरूप का जागरण, अर्हत् स्वरूप का जागरण**। आत्मा का जागरण—यह बहुत व्यापक शब्द है। इसकी अनेक शाखाएं हैं। अनेक

स्तर हैं। आदमी दवा लेता है शरीर को स्वस्थ रखने के लिए। यह समग्र दृष्टिकोण है। किन्तु जब घुटने में दर्द होता है तो उस दर्द की दवा लेता है, जब दांत में दर्द होता है तो दांत के दर्द की दवा लेता है। इसी प्रकार कमर, कान, आंख के दर्द में भिन्न-भिन्न दवाइयां लेता है। इन रोगों के आधार पर इनके विशेषज्ञ चिकित्सक भी बन गए। कान के दर्द का विशेषज्ञ, दांत के दर्द का विशेषज्ञ, हड्डी का विशेषज्ञ आदि-आदि। ठीक इसी दृष्टिकोण से हम नमस्कार महामंत्र की उपासना को देखें। **नमस्कार महामंत्र** की साधना का समग्र दृष्टिकोण है—आत्मा का जागरण। किन्तु इस जागरण की प्रक्रिया के साथ-साथ साधक को यह देखना होगा कि वह किस बीमारी से अधिक ग्रस्त है—क्रोध की बीमारी, अभिमान या लोभ की बीमारी, भय या हीनभावना की बीमारी, क्षोभ या चिन्ता की बीमारी ? जो बीमारी ज्यादा सताती है उसे पहले मिटाना है। यह सच है कि साधना का मूल लक्ष्य है—आत्मा का जागरण, पूरी चेतना को जगाना, शक्ति के स्रोतों को जागृत करना, आनन्द के महासागर का अवगाहन करना। किन्तु पहले यह भी जानना जरूरी हो जाता है कि कौन-सा आध्यात्मिक दोष अधिक सता रहा है और उसे समाप्त करने का रास्ता क्या है ? जब यह बात मन में उपजती है तब पद्धति का प्रश्न सामने आता है।

एक बात है कि महामंत्र की आराधना से निर्जरा होती है, कर्म-क्षय होता है, आत्मा की विशुद्धि होती है। इस बात को मानकर आप जब चाहें, तब इसका जाप करें, जहां चाहें वहां इसकी माला फेरें, जिस दिशा में चाहें उस दिशा में मुंह कर इसे जपें। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते—जब भी याद आए तब इसका स्मरण करें: जाप करें, ध्यान करें, कोई अड़चन नहीं है। किन्तु जब आप किसी एक रोग-विशेष को ही मिटाना चाहते हैं तो विशेष पद्धति का ही अनुसरण करना होगा। यदि आप भय की बीमारी मिटाना चाहते हैं तो नमस्कार महामंत्र की एक विशेष पद्धति का प्रयोग करना होगा और यदि आप चिन्ता या क्षोभ की चिकित्सा नमस्कार महामंत्र द्वारा करना चाहेंगे तो दूसरी पद्धति का आलंबन लेना होगा। एक ही पद्धति से सब रोग नहीं मिटाए जा सकते। प्रत्येक रोग के लिए नमस्कार महामंत्र की एक विशेष प्रकार की साधना करनी होगी, विशेष प्रकार के ध्वनि-तरंग और प्रकंपन पैदा करने होंगे, जिससे कि उस रोग की

गांठ खुले और उस पर ऐसा तीव्र प्रहार हो कि वह गांठ समाप्त ही हो जाए। यह स्मृति में रहे कि जितनी बीमारियां, उतने ही इलाज।

मंत्रविद् आचार्यों ने नमस्कार महामंत्र के साथ रंगों का समायोजन किया। मंत्र के गूढतम रहस्यों को जानने वाले आचार्यों ने उन रहस्यों के आधार पर, एक-एक पद के लिए एक-एक रंग की समायोजना की। हमारा सारा जगत् पौद्गलिक है, भौतिक है। हमारा शरीर भी पौद्गलिक है। पुद्गल के चार लक्षण हैं—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श। सारा भू-वलय, सारा मूर्त संसार वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के प्रकंपनों से प्रकंपित है। वर्ण (रंग) से हमारे शरीर का बहुत निकट का संबंध है। वर्ण से हमारे मन का, आवेगों का, कषायों का बहुत बड़ा संबंध है। शारीरिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, मन का स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, आवेगों की कमी और वृद्धि—ये सब इन रहस्यों पर निर्भर हैं कि हम किस प्रकार के रंगों का समायोजन करते हैं और किस प्रकार के रंगों से हम अलगाव या संश्लेष करते हैं। नीला रंग शरीर में कम होता है तब क्रोध अधिक आता है। नीले रंग की पूर्ति हो जाने पर गुस्सा कम हो जाता है। श्वेत रंग की कमी होती है तब अस्वास्थ्य बढ़ता है। लाल रंग की कमी होने पर आलस्य और जड़ता पनपती है। पीले रंग की कमी होने पर ज्ञान-तंतु निष्क्रिय बन जाते हैं। काले रंग की कमी होने पर प्रतिरोध की शक्ति कम हो जाती है। मंत्रशास्त्र कहता है—जब ज्ञान-तंतु निष्क्रिय हो जाएं तब ज्ञानकेन्द्र में दस मिट तक पीले रंग का ध्यान करें। ज्ञान-तंतु सक्रिय हो जाएंगे। व्यक्ति बहुत बड़ी समस्या में उलझा हुआ है, समाधान प्राप्त नहीं हो रहा है तो वह आनन्दकेन्द्र (हृदय) में दस मिनट तक पीले रंग, सुनहले रंग का ध्यान करे। समाधान सामने दीखने लगेगा।

रंगों के साथ मनुष्य के मन का, मनुष्य के शरीर का जितना गहरा संबंध है, उसे जब तक हम जान नहीं लेते तब तक नमस्कार महामंत्र की रंगों के साथ साधना करने की बात हमारी समझ में नहीं आ सकती।

हम ज्ञानकेन्द्र पर 'णमो अरहंताणं' का ध्यान श्वेत वर्ण के साथ करते हैं। श्वेत वर्ण हमारी आन्तरिक शक्तियों को जागृत करने वाला होता है। हमारे मस्तिष्क में ग्रे रंग, धूसर रंग का एक द्रव पदार्थ है। वह समूचे ज्ञान का संवाहक है। पृष्ठरज्जु में भी वह पदार्थ है। मस्तिष्क में अर्हत् का धूसर रंग

के साथ, श्वेत वर्ण के साथ ध्यान करते हैं। इससे ज्ञान की सोयी हुई शक्तियां जागृत होती हैं, चेतना का जागरण होता है। इसीलिए इस पद की आराधना के साथ ज्ञानकेन्द्र और सफेद वर्ण की समायोजना की गई है। मंत्रशास्त्र का यह अभिमत है कि स्वास्थ्य के लिए कोई भी ध्यान करना चाहे तो उसे श्वेत वर्ण का ध्यान करना चाहिए। श्वेत वर्ण स्वास्थ्यदायक होता है, स्वास्थ्य का प्रतीक होता है। पता नहीं, होमियोपैथी वालों ने सफेद गोलियों का चुनाव क्यों किया ? उनकी सारी चीजें सफेद हैं। संभव है उन्होंने सोचा हो कि दवा रोग-निवारण में काम करेगी, साथ-साथ सफेद वर्ण भी उसका सहयोग करेगा।

‘णमो सिद्धाणं’ का ध्यान दर्शनकेन्द्र में रक्त वर्ण के साथ किया जाता है। बालसूर्य जैसा लाल वर्ण। दर्शनकेन्द्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण चैतन्यकेन्द्र है। लालवर्ण हमारी आन्तरिक दृष्टि को जागृत करने वाला है। तृतीय नेत्र, पिच्यूटरी ग्लैण्ड और उसके स्रावों को नियंत्रित करने के लिए लाल रंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। लाल रंग इस ग्रन्थि को सक्रिय बनाता है। इस रंग की यह विशेषता है कि वह सक्रियता पैदा करता है। कभी सुस्ती या आलस्य का अनुभव हो, जड़ता आ जाए तो दर्शनकेन्द्र में दस मिनट तक लाल रंग का ध्यान करें। ऐसा अनुभव होगा कि स्फूर्ति आ गई है। मैं कोई रंग-चिकित्सा की बात नहीं कर रहा हूं। मैं मंत्रशास्त्र के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रंग-विज्ञान की बात कह रहा हूं। उन्होंने विभिन्न रंगों के आधार पर विभिन्न चैतन्यकेन्द्रों को जागृत करने और विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि की बात कही है। आत्म-साक्षात्कार, अन्तर्दृष्टि का विकास, अतीन्द्रिय चेतना का विकास—यह दर्शनकेन्द्र से होता है। ‘णमो सिद्धाणं’ मंत्र, लालवर्ण और दर्शनकेन्द्र—इन तीनों का समायोजन हमारी आन्तरिक दृष्टि को जागृत करने का अनुपम साधन है। यह एक मार्ग है। किसको कब सिद्धि होती है, यह उसके प्रयत्न की सघनता पर निर्भर करता है। इतना निश्चित है कि यह मार्ग वहां पहुंचाता है।

‘णमो आयरियाणं’ मंत्र-पद है। इसका रंग पीला है। यह रंग हमारे मन को सक्रिय बनाता है। इसका स्थान है ‘विशुद्धिकेन्द्र’। यह स्थान ‘चंद्रमा’ का है। हमारे शरीर में पूरा सौरमंडल है, सूरज है, चांद है, बुध है, राहु है, मंगल है। सारे ग्रह हैं। हस्तरेखा विशेषज्ञ हाथ की रेखाओं के आधार

पर नौ ग्रहों का ज्ञान कर लेते हैं। ललाट-विशेषज्ञ ललाट पर खिंचने वाली रेखाओं के आधार पर और योग के आचार्य चैतन्य केन्द्रों के आधार पर नौ ग्रहों का ज्ञान कर लेते हैं। नौ ग्रह हमारे शरीर में हैं। तैजसकेन्द्र सूर्य का स्थान है। विशुद्धिकेन्द्र चन्द्रमा का स्थान है। ज्योतिषी चन्द्रमा के माध्यम से व्यक्ति के मन की स्थिति को पढ़ता है। चन्द्रमा और मन का संबंध है। जैसी स्थिति चन्द्रमा की होती है वैसी स्थिति मन की होती है। मन का स्थान चन्द्रमा का स्थान है। 'णमो आयरियाणं' का ध्यान विशुद्धिकेन्द्र पर पीले रंग के साथ किया जाता है। यह चैतन्यकेन्द्र हमारी भावनाओं का नियामक है, हमारे मन का नियामक है। तैजसकेन्द्र वृत्तियों को उभारता है और विशुद्धिकेन्द्र उन पर नियंत्रण करता है। शरीरशास्त्री मानते हैं कि थाइराइड ग्लैंड वृत्तियों पर नियंत्रण करने वाली ग्रन्थि है। इससे आवेग भी नियंत्रित होते हैं। इस ग्रन्थि का स्थान है कंठ। रंग के साथ इस केन्द्र पर 'आचार्य' का ध्यान करने पर हमारी वृत्तियां शांत होती हैं, वे पवित्रता की दिशा में सक्रिय बनती हैं। विशुद्धिकेन्द्र पवित्रता की संवृद्धि करने वाला केन्द्र है। यहां मन पवित्र होता है, निर्मल होता है।

'णमो उवज्जायाणं'—यह मंत्रपद है। इसका रंग है नीला। इसका स्थान है आनन्दकेन्द्र। नीला रंग शांति देने वाला होता है। यह रंग समाधि, एकाग्रता पैदा करता है और कषायों को शांत करता है। नीला रंग आत्म-साक्षात्कार में सहायक होता है।

'णमो लोए सव्वसाहूणं'—यह मंत्र-पद है। इसका रंग है—काला। इसका स्थान है शक्तिकेन्द्र। शक्तिकेन्द्र या पैरों के स्थान पर काले वर्ण के साथ इस मंत्र-पद की आराधना की जाती है। काला वर्ण अवशोषक होता है। काला छाता क्यों रखते हैं ? सर्दी में काले-नीले रंग के कपड़े क्यों पहने जाते हैं ? न्यायालयों में वकील और न्यायाधीश काला कोट क्यों पहनते हैं ? यह सब इसलिए कि काला रंग अवशोषक होता है। वह बाहर के प्रभाव को भीतर नहीं जाने देता। काला वर्ण बहुत महत्त्वपूर्ण वर्ण है।

नमस्कार महामंत्र के पांच पदों के साथ पांच वर्णों का चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण है, गूढ़ है, रहस्यमय है। मैंने केवल दिशा-संकेत मात्र किया है। यह इसलिए किया है कि हमारा यह संसार पौद्गलिक है—वर्णमय, गंधमय, रसमय और स्पर्शमय है। हम वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का आलंबन लें।

पांच इन्द्रियां हैं और पांच उनके विषय हैं। उनका आलंबन लें। हम इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियों से परिचित नहीं हैं, उनकी स्थूल शक्तियों से परिचित हैं। यदि उनकी सूक्ष्म शक्तियों से परिचित होना चाहें तो हमें उन पर प्रयोग करना होगा। हमने पुद्गल के गुणों का स्थूल रूप देखा है, जाना है। यदि हमें सूक्ष्म जगत् की यात्रा करनी है तो उनके सूक्ष्म रूप को भी समझना होगा, उसकी साधना करनी होगी।

महर्षि पतंजलि ने विषयवती साधना का सुन्दर विवरण दिया है। मन को स्थिर रखने के लिए इसका आलंबन लिया जाता है। इससे इन्द्रियों की शक्ति विकसित होती है। इससे छोटे-मोटे साक्षात्कार होते हैं। जब तक साधना करने वाले व्यक्ति में, ध्यान करने वाले व्यक्ति में अपना अनुभव नहीं जागता, तब तक वह साधना के लिए समर्पित नहीं हो सकता। साधना के लिए वही व्यक्ति समर्पित हो सकता है, जिसे अपना अनुभव हो जाए। अपना अनुभव हुए बिना साधना का मार्ग प्रशस्त नहीं होता।

जिह्वा एक इन्द्रिय है और उसका विषय है रस। उस रस को भी ध्यान का विषय बनाएं। जिह्वाग्र पर ध्यान करें। इससे रस-चेतना, रस-संवेदना जागृत हो जाएगी। फिर जिह्वाग्र पर ध्यान करते ही जो चाहेंगे, उस रस का स्वाद आने लगेगा। पांच मिनट के ध्यान से ऐसी स्थिति नहीं बन सकती। जो व्यक्ति इस संवेदना को प्राप्त करना चाहे, वह पहले तेले की तपस्या करे और उस तपस्या में तीन दिन तक जिह्वाग्र पर ध्यान करे। अवश्य ही उसकी रस-संवेदना जाग जाएगी। जिह्वा के मध्यभाग में स्पर्श का संवेदन जागता है। आंख पर ध्यान करें, आंख का संवेदन जाग जाएगा। समय कुछ लंबा होना चाहिए। अंधेरे में भी दीखने लग जाएगा। घोरतम अंधकार में भी उसे वैसा ही दिखाई देगा जैसा प्रकाश में दीखता है। कान का संवेदन जगाने पर दूर की बातें सुनाई देने लग जाती हैं।

प्रश्न होता है—दो आने के केले को खाकर केले का स्वाद जाना जा सकता है तो फिर तीन दिन का उपवास और निरन्तर जिह्वा के अग्रभाग पर ध्यान करने का कष्ट क्यों करना चाहिए ? यह प्रश्न अनेक बार आता है। वह संवेदन बुद्धिगम्य होता है, अनुभवगम्य नहीं होता। साधक को बुद्धि की सीमा को तोड़कर अनुभव की सीमा पर आना पड़ता है। हम जानते हैं कि पदार्थ से सुख मिलता है, वस्तु को खाने से सुख मिलता है।

जिस व्यक्ति ने जिह्वाग्र के संवेदन को जागृत कर लिया, उस व्यक्ति का यह भ्रम टूट जाएगा कि पदार्थ से सुख मिलता है। वह अनुभव करेगा कि पदार्थ में ही नहीं हमारे भीतर से भी सुख है। तब खोज का रास्ता आगे बढ़ जाएगा कि जीभ को भी छोड़ो, भीतर चैतन्य है, उसके स्पर्श से न जाने कितना सुख मिलता है। सारी दिशा बदल जाएगी, दृष्टिकोण बदल जाएगा और चलने का रास्ता बदल जाएगा। जब दृष्टिकोण बदल जाता है तब दिशा बदल जाती है। व्यक्ति की सारी दिशाएं बाहर की ओर हैं। वह बाहर की ओर दौड़ रहा है। जब हम भीतर की दिशा को उद्घाटित कर लें और एक निश्चित सीमा में उसका प्रयोग करें तो पता चलेगा कि जहां खोज रहे थे, वहां बहुत थोड़ा था और जहां नहीं खोजा था वहां बहुत ज्यादा है। किन्तु न जाने मनुष्य का कैसा स्वभाव है कि वह थोड़े के लिए बहुत गंवा देता है। वह छोटी बात के लिए बड़ी बात को भुला देता है। क्योंकि छोटी तत्काल सामने आ जाती है और बड़ी के लिए बड़ा प्रयत्न करना होता है। बहुत सारे लोग तात्कालिकता में विश्वास करते हैं, वे दीर्घकालिक नीति से नहीं सोचते। वे नहीं जानते कि तात्कालिक नीति कितनी खतरनाक होती है। किसी को धोखा देकर व्यक्ति एक बार लाभ उठा सकता है किन्तु सदा के लिए वह घाटे में रह जाता है। व्यापार के क्षेत्र में जिन लोगों ने बहुत बड़ी प्रगति की, वे दीर्घकालिक नीति के आधार पर चले। उन्होंने सदा यह सोचा, हमें लाभ हो या न हो, ग्राहक का विश्वास नहीं खोना है। उसे सदा बढ़ाते ही रहना है। ग्राहक का विश्वास बना रहेगा तो आज नहीं कल लाभ प्राप्त होता ही रहेगा। विश्वास को समाप्त कर एक बार लाभ उठाया जा सकता है, किन्तु सदा के लिए होने वाले लाभ से वंचित रहना पड़ता है। जो लोग दीर्घकालीन लाभ की नीति का आश्रय लेकर चलते हैं, वे सदा लाभ में रहते हैं। वे सदा विकास करते रहते हैं।

हम भी सिनेमा देखकर तनाव मिटाने की बात न सोचें। उससे तात्कालिक मनोरंजन हो सकता है, किन्तु तनाव मिट नहीं सकता। नया तनाव और उत्पन्न हो जाता है। अध्यात्म के प्रयोगों में समय लंबा लग सकता है किन्तु जो लाभ होता है, वह स्थायी होता है। यह लम्बी दिशा है। यह लंबा यात्रा-पथ है। यह यात्रा जल्दी समाप्त नहीं होती। किन्तु लाभ अवश्य होता है। यदि साधना करने वालों में विश्वास की एक किरण जाग

जाए तां निश्चयत हा व इतना लाभ प्राप्त करग। एक पदाथ स मिलन वाला लाभ उसके सामने नगण्य होगा, तुच्छ होगा।

नमस्कार महामंत्र की आराधना में तीन दिशाएं उद्घाटित हैं—वर्ण की दिशा, अक्षरों की दिशा और चैतन्यकेन्द्रों की दिशा। इनका प्रयोग करें। अध्यात्म की साधना करने वाला व्यक्ति सदा जागरूक रहे। उसके मन में अपनी आंतरिक बीमारियों को मिटाने की तीव्र आकांक्षा होनी चाहिए। बीमारी उठते ही यदि इलाज हो जाता है तो वह सहजतया मिट जाती है। यदि उसके इलाज में विलंब होता है तो वह भयंकर रूप धारण कर लेती है। अध्यात्म साधक का मन इतना जागरूक और संवेदनशील होना चाहिए कि वह प्रत्येक आंतरिक बीमारी को पकड़ सके, अनुभव कर सके, उसे मिटाने के लिए नाना दिशाओं को खोज सके। उन दिशाओं की खोज में नमस्कार महामंत्र अपने नानारूपों में बहुत उपयोगी हो सकता है। उस उपयोगिता को हम समझें और उससे लाभ उठाएं।

१०. महामंत्र : निष्पत्तियां-कसौटियां

- ध्येय के प्रति आकर्षण होने पर विकल्प स्वयं शान्त ।
- अहं अर्हत् में और ममत्व समत्व में बदल जाता है ।
- मंत्रसिद्धि के लक्षण—
 १. आन्तरिक शक्ति का विकास ।
 २. चित्त की प्रसन्नता, तुष्टि ।
 ३. ज्योतिदर्शन ।
 ४. प्रकाशमय शरीर ।
 ५. आनन्द अश्रु ।
 ६. पुलकन ।
 ७. इच्छाशक्ति का विकास ।
 ८. पौद्गलिक पदार्थों की अनुकूल
- मंत्र का आमनाय—मंत्र की शक्ति में विश्वास ।
- ध्येय के साथ तादात्म्य ।

जीवन की सारी निष्पत्तियां साधना के प्रारंभ-बिन्दु से चलती हैं। साधना का एक आरंभ-बिन्दु होता है। वहां से हम चलना शुरू करते हैं। जब पहला चरण उठता है तब निष्पत्ति की आशा नहीं की जा सकती। पहला चरण उठते ही कोई निष्पत्ति की आशा करे तो उससे बढ़कर नासमझी नहीं होगी। पहले चरण में हम ध्येय की दिशा में चलें किन्तु निष्पत्ति का भाव न लाएं। हमारा आत्मविश्वास इतना प्रबल हो कि जिस

दिशा में हमने कदम बढ़ाया है उस दिशा में हम आगे बढ़ते जाएंगे और एक दिन गन्तव्य तक पहुंच जाएंगे। जिस ध्येय की प्राप्ति के लिए हमने साधना प्रारंभ की है, वह ध्येय उपलब्ध हो जाएगा। ध्येय और ध्यान के बीच की कोई दूरी नहीं रहेगी। इतना दृढ़ विश्वास जब व्यक्ति की चेतना में जाग जाता है तब ये शक्तियां निश्चित ही उसे प्राप्त हो जाती हैं, परिणाम उसके पैरों में लुठने लगता है और वह व्यक्ति स्वयं परिणाममय बन जाता है।

चावल कच्चा है। आंच पर चढ़ाया। पकने लगा। ठीक समय हुआ और वह सिद्ध हो गया। जितने भी खाने के पदार्थ हैं, पकने पर सब सिद्ध होते हैं। ध्यान भी सिद्ध होता है और मंत्र की आराधना भी सिद्ध होती है, साधना चरम बिन्दु तक पहुंचती है, तब निश्चित ही सिद्धि होती है। किन्तु साधना और सिद्धि के बीच की जो दूरी है, उसे बहुत समझदारी के साथ सम्पन्न करना चाहिए। मध्यावधि की यह यात्रा बहुत सोच-समझकर होनी चाहिए। यह यात्रा का विवेक निष्पत्ति को उपलब्ध कराने वाला विवेक है। यदि यात्रा का विवेक ठीक नहीं होता है तो निष्पत्ति कभी नहीं हो सकती। यात्रा यदि निश्चित दिशा में चलती है तो निष्पत्ति निश्चित ही होती है। इसमें अविश्वास करने की कोई बात नहीं है।

मंत्र की आराधना की अनेक निष्पत्तियां हैं। वे निष्पत्तियां आंतरिक भी हैं और बाह्य भी हैं। मानसिक भी हैं और शारीरिक भी हैं। मंत्र की आराधना से जब मंत्र सिद्ध होने लगता है तब कुछ निष्पत्तियां हमारे सामने प्रकट होती हैं। **पहली निष्पत्ति है—मन की प्रसन्नता।** जैसे-जैसे मंत्र सिद्ध होने लगता है, मन में प्रसन्नता आने लगती है। हर्ष नहीं, प्रसन्नता। हर्ष और प्रसन्नता में बहुत बड़ा अन्तर है। किसी प्रिय वस्तु की उपलब्धि होती है तब व्यक्ति को हर्ष होता है। जहां हर्ष होता है वहां शोक भी अवश्य होगा। दोनों साथ-साथ चलते हैं। यह न मानें कि हर्ष तो हो और शोक न हो। यह भी नहीं हो सकता कि शोक हो और हर्ष न हो। कभी हर्ष होगा तो कभी शोक भी होगा और कभी शोक होगा तो कभी हर्ष भी होगा। हर्ष और शोक एक द्वन्द्व है। मंत्र की आराधना के द्वारा जो प्राप्त होता है वह है चित्त की प्रसन्नता, मन की निर्मलता। प्रसन्नता हमारे अन्तःकरण की निर्मलता है। इसमें मैल का अवकाश ही नहीं रहता। न हर्ष का मैल होता

है और न शोक का मैल होता है। कोई मैल नहीं रहता। सारे मैल धुल जाते हैं। न राग का मैल और न द्वेष का मैल। मन बिलकुल निर्मल और प्रसन्न।

महामंत्र की आराधना की पहली निष्पत्ति या पहला परिणाम है—मन की प्रसन्नता, चित्त की निर्मलता।

इसका दूसरा परिणाम है—चित्त की सन्तुष्टि। विना किसी उपलब्धि के भी मन संतुष्ट हो जाता है। जो संतोष पदार्थ की उपलब्धि के पश्चात् होता है, कुछ मिलने पर होता है, वह वास्तव में संतोष नहीं होता, वह एक वासना की तृप्तिमात्र होता है। तृप्ति के साथ अतृप्ति जुड़ी होती है। जहां तृप्ति होगी, वहां कुछ समय के बाद अतृप्ति भी होगी। पानी पीया। प्यास बुझ गई। एक घंटा बीता, दो घंटे बीते, फिर प्यास लग जाएगी। तृप्ति के साथ अतृप्ति जुड़ी ही रहती है। किंतु तोष के साथ, संतोष के साथ कुछ भी जुड़ा नहीं रहता। पदार्थ की उपलब्धि के विना भी मन संतोष से इतना भर जाता है कि सारी चाह मिट जाती है, कुछ भी नहीं चाहिए।

मानसिक तोष मंत्र की दूसरी निष्पत्ति है।

इसी प्रकार मंत्र की आराधना से स्मृतिशक्ति का विकास होता है, वौद्धिक शक्तियों का विकास होता है और अनुभव की चेतना जागती है। ये मानसिक निष्पत्तियां हैं जो प्रत्यक्ष अनुभव में आती हैं।

मंत्र की आराधना का शरीर पर भी प्रभाव होता है। मंत्र की आराधना जैसे-जैसे विकसित होने लगती है, अनायास ही व्यक्ति की आंखों में आंसू उछल पड़ते हैं। शरीर रोमांचित हो जाता है। कंठ गद्गद हो जाता है। वाणी भारी-सी हो जाती है। ये शारीरिक लक्षण प्रकट होने लगते हैं। स्वास्थ्य का भी परिवर्तन होता है।

जप करने वाला या मंत्र की आराधना करने वाला व्यक्ति क्षय, अरुचि अग्नि की मंदता आदि-आदि बीमारियों पर नियंत्रण पा लेता है। बीमारियां समाप्त हो जाती हैं।

एक बात में स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जहां मानसिक उपलब्धियों का प्रश्न है, मैं अपने अनुभव के बल पर कह सकता हूँ कि ये उपलब्धियां होती हैं, किंतु जहां तक शारीरिक उपलब्धियों का प्रश्न है, मैंने इस दिशा में अभी तक कोई प्रयोग नहीं किया है इसलिए मैं अपने अनुभव के आधार

पर यह नहीं कह सकता कि ऐसा होता ही है। किंतु सिद्धांततः ऐसा लगता है कि यह होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। जो बात अपने अनुभव में आती है, जिसका स्वयं अनुभव होता है, उसके विषय में पूरे आत्मविश्वास के साथ कुछ भी कहने में कोई कठिनाई नहीं होती, किंतु जिसका व्यक्ति स्वयं प्रयोग नहीं कर लेता, उसके विषय में बलपूर्वक कुछ कहना दूसरे को भुलावे में डालने जैसा है। यह उचित नहीं होता। यह सच है कि मंत्र की आराधना से ऐसा होता है किंतु मैं आपको यह नहीं कह सकता कि यह मेरा अपना अनुभव है।

मंत्र की आराधना जैसे-जैसे आगे बढ़ती है। संकल्प-शक्ति का विकास होता चला जाता है। इससे इच्छाशक्ति बहुत विकसित होती है, प्रबल होती है। इससे एक प्रकार का कवच हमारे चारों ओर बन जाता है। तब बाहर का आक्रमण, बाहर का संक्रमण, बाहर का कुप्रभाव उस कवच को भेदकर व्यक्ति की चेतना तक नहीं पहुंच पाता। वह बाहर ही रह जाता है। संकल्पशक्ति और प्राण-शक्ति का विकास होता है। आभामंडल, लेश्याओं का घेरा और एक विचित्र प्रकार का ओरा—ये सारे हमारे शरीर के आसपास, चारों ओर एक वलयाकार में बन जाते हैं।

संकल्प-शक्ति का बहुत बड़ा महत्त्व है। साधना की यह धुरी है। चाहे आप प्रेक्षा का अभ्यास करें, दीर्घश्वास का अभ्यास करें, शरीर-प्रेक्षा या चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का अभ्यास करें, लेश्याओं का ध्यान करें या और कुछ भी प्रयोग करें, प्रत्येक प्रयोग की पृष्ठभूमि में जिस सामग्री की जरूरत है, उस सामग्री का सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण है—संकल्प-शक्ति, इच्छा-शक्ति। जब तक संकल्प-शक्ति का विकास नहीं होता तब तक प्रेक्षा-ध्यान के अग्रिम अभ्यास में आने वाले अवरोधों को नहीं मिटाया जा सकता, आने वाली बाधाओं और विघ्नों का निराकरण नहीं किया जा सकता। एक विघ्न आता है और घुटने टिक जाते हैं। एक बाधा आती है और व्यक्ति चलते-चलते रुक जाता है। एक बाधा आती है और साधना की दिशा ही बदल जाती है। यह दिशा का परिवर्तन, गति का परिवर्तन, स्थिति का परिवर्तन बाधाओं के कारण होता है। इसलिए साधना करने वाले व्यक्ति को पहले यह सोचना चाहिए कि बाधाओं का निवारण कैसे किया जाए। जब तक साधक बाधाओं के निवारण का उपाय साथ लेकर नहीं चलता तब तक

वह ठीक नहीं चल पाता। बाधाओं के निवारण का उपाय हमारे हाथ में होना चाहिए।

बाधाएं आंतरिक भी हैं और बाह्य भी हैं। भीतर से—मन से आने वाली बाधाएं भी हैं और वातावरण से आने वाली बाधाएं भी हैं। दोनों बाधाओं के बीच से व्यक्ति को गुजरना होता है। इसके लिए पूरी तैयारी और सामग्री चाहिए। उस सज्ञा का सबसे पहला भाग है—संकल्प-शक्ति का विकास, इच्छा-शक्ति का विकास।

एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा—‘गुरुदेव ! सामने इतनी बड़ी चट्टान है। क्या इस पर भी किसी का शासन है ?’

गुरु ने कहा—‘हां, है।’

‘किसका शासन है ?’

‘लोहे का। हथौड़ा या छेनी जब इस पर लगती है तब चूर-चूर हो जाती है।’

‘लोहे पर किसका शासन है ?’

‘शिष्य ! लोहे पर आग का शासन है। कितना भी लोहा हो, आग उसे पिघाल देती है।’

‘गुरुदेव ! आग इतनी शक्तिशाली है, उस पर किसका शासन है ?’

‘शिष्य ! आग पर पानी का शासन है।’

‘गुरुदेव ! पानी पर किसका शासन है ?’

‘शिष्य ! पानी पर वायु का शासन है।’

‘गुरुदेव ! वायु पर किसका शासन है ?’

‘शिष्य ! वायु पर संकल्प-शक्ति का शासन है। जिसकी संकल्प-शक्ति बलवान् होती है, वह वायु को वश में कर लेता है।

सामान्यतः व्यक्ति एक मिनट में १५-१७ श्वास लेता है। दीर्घश्वास के अभ्यास में, संकल्प-शक्ति के सहारे वह एक मिनट में चार, दो या एक श्वास भी लेने लग जाता है। संकल्प-शक्ति के द्वारा वायु पर नियंत्रण हो जाता है। संकल्प-शक्ति के प्रयोग से श्वास को बाहर या भीतर रोक सकते हैं। बाहर का श्वास बाहर और भीतर का श्वास भीतर ही रुक जाता है।

वायु पर संकल्प-शक्ति का नियंत्रण होता है। जिस व्यक्ति ने संकल्प-शक्ति का विकास कर लिया, संकल्प-शक्ति की साधना कर ली, रू

व्यक्ति ने समूचे भूतल पर, विश्व की सारी रचना पर अपना नियंत्रण पा लिया। जिसने संकल्प-शक्ति का विकास नहीं किया, उसने कुछ भी नहीं किया। वह चलता है तो लड़खड़ाता है, बैठता है तो सुस्त बनकर बैठता है और खड़ा होता है तो लड़खड़ाता-सा ही खड़ा होता है। व्यक्ति कोई भी काम करे, संकल्प-शक्ति के अभाव में वह कार्य का प्रारंभ रुआंसे की स्थिति में ही करता है और कार्य की संपन्नता भी रुआंसे की स्थिति में करता है। रोते-रोते ही शुरू करता है और रोते-रोते ही पूरा करता है। जिस व्यक्ति की संकल्प-शक्ति दृढ़ हो जाती है वह दुनिया से अजेय बन जाता है, चाहे फिर वह कुछ भी न करे। जिसके पास संकल्प-शक्ति नहीं होती, उसके पास सब कुछ होने पर भी वह अपने-आपको दीन, हीन अनुभव करता है। इस आंतरिक दीनता को, मन से उत्पन्न होने वाली दीनता को मिटाने का यदि कोई उपाय है तो वह है संकल्प-शक्ति। कुछेक व्यक्ति हीनभावना से इतने ग्रस्त होते हैं कि वे हर बात में हीनता का ही अनुभव करते हैं। वे प्रत्येक कार्य को निराशा के वातावरण में ही प्रारंभ करते हैं। चलते समय सोचते हैं—चल तो रहे हैं, घर सुरक्षित पहुंचेंगे या नहीं ? बाजार में जा रहे हैं, दुर्घटना से बचेंगे या नहीं ? निराशा ही निराशा। एक व्यक्ति ने मुझे बताया—मैं रात को जब सोता हूं तो यह आशंका बनी की बनी रहती है कि कहीं कमरे की छत नहीं टूट जाए। जब मैं पुल से गुजरता हूं तो चिंता रहती है कि पुल न टूट जाए। भय ही भय। आशंका ही आशंका। निराशा ही निराशा। यह सब मन की दुर्बलता के कारण होता है। मन इतना दुर्बल बन जाता है कि व्यक्ति चारों ओर से भय, निराशा और आशंका से ग्रस्त हो जाता है। चारों ओर से निराशा बरसने लगती है। यह सब कुछ होता है संकल्प-शक्ति के अभाव में। जिसकी संकल्प-शक्ति दृढ़ होती है, वह टूटते हुए पुलों पर से भी हंसते-हंसते गुजर जाता है और कभी-कभी टूटने वाला पुल भी संकल्प-शक्ति से संपन्न व्यक्ति के चलने पर क्षण-भर के लिए टूटने से रुक जाता है। संकल्प-शक्ति के द्वारा ऐसे परमाणुओं का संक्रमण होता है कि होने वाली दुर्घटना भी टल जाती है।

मंत्र की साधना का बहुत बड़ा परिणाम, उपलब्धि या निष्पत्ति है—संकल्प-शक्ति का विकास। इसके साथ हम प्राण को भी समझें।

हमारे शरीर में सबसे अधिक सक्रियता पैदा करने वाला है—तैजस शरीर, विद्युत् शरीर। जब तक हमारा यह तैजस शरीर शक्तिशाली नहीं होता तब तक कोई भी प्राण शक्तिशाली नहीं होता। प्राण दस हैं—पांच इन्द्रियों के पांच प्राण, मन प्राण, वचन प्राण, शरीर प्राण, श्वास प्राण और आयुष्य प्राण। ये दसों प्राण तैजस की शक्ति के बिना निष्प्राण हो जाते हैं। सारे चमत्कार विद्युत् से निष्पन्न होते हैं। वर्तमान के विज्ञान ने जो भी विकास किया है, वह सारा विद्युत् का ऋणी है। सारा विकास ऊर्जा के आधार पर हुआ है। आज यदि विद्युत् न हो तो सारा विज्ञान ही समाप्त हो जाए। हमारा शरीर सदा से वैज्ञानिक है। इस शरीर में वैज्ञानिक युग अनादिकाल से चल रहा है। आज के वैज्ञानिक युग की आयु ४००, ५०० वर्षों की है, किन्तु मनुष्य के शरीर में वैज्ञानिक युग की आयु अनन्त काल की है।

हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका विद्युत् पैदा करती है। हमारा मस्तिष्क धारावाही विद्युत् पैदा करता है। हमारे शरीर का कण-कण सांघर्षणिक विद्युत् उत्पन्न करता है। इस समूचे विद्युत् का जेनरेटर है—तैजस शरीर। यह शरीर जब शक्तिशाली होता है तब सब ठीक चलता है और यह शरीर जब मंद हो जाता है तब सब कुछ गड़बड़ा जाता है।

मंत्र की आराधना के द्वारा तैजस शरीर को सक्रिय बनाया जाता है। मंत्र की आराधना का सबसे पहला प्रभाव पड़ता है तैजस शरीर पर। जब तक तैजस शरीर तक मंत्र नहीं पहुंचता तब तक मंत्र सफल भी नहीं होता। वह मात्र शब्द का पुनरावर्तन बनकर रह जाता है।

मंत्र की सफलता का सूत्र है—शब्द को आगे पहुंचाते-पहुंचाते स्थूल शरीर की सीमाओं को पार कर, तैजस शरीर की सीमा में पहुंचा देना।

जब मंत्र तैजस शरीर तक पहुंच जाता है तब वहां उसकी शक्ति बढ़ जाती है। फिर तैजस शरीर से जो प्राणधारा निकलती है उससे मंत्र शक्तिशाली बन जाता है। इस स्थिति में शरीर की शक्ति बढ़ जाती है, मन की शक्ति बढ़ जाती है और संकल्प की शक्ति बढ़ जाती है। मन की सारी क्रियाओं की शक्ति बढ़ जाती है।

यह सारा का सारा आराधना के द्वारा संभव हो सकता है। केवल सामग्री से कुछ नहीं होता। सफलता के लिए अभ्यास अपेक्षित होता है।

आप यह न सोचें कि मंत्र के विषय में सुनने, जानने मात्र से निष्पत्तियां मिल जाएंगी। आकाश की ओर देखा और निष्पत्तियां बरस जाएंगी। ऐसा कभी संभव नहीं है। अभ्यास और साधना जरूरी है। साधना के बिना यह संभव नहीं है।

सामग्री होने पर भी जब साधना या अभ्यास नहीं किया जाता तब कच्ची सामग्री से कुछ नहीं बनता। कच्ची सामग्री को पक्की बनाना चाहिए। कच्चे माल को पक्का बनाना होता है। जब तक कच्ची सामग्री पक नहीं जाती, तब तक वह सामग्री कुछ भी काम की नहीं रहती। वह केवल पड़ी रहने योग्य होती है। उसका कोई भी उपयोग नहीं हो सकता।

बहिन के घर विवाह था। भाई गया। उसे कपड़े देने थे। उसने सोचा, कौन झंझट करे ? वह रुई के थाल भरकर ले गया। बहिन ने थाल देखे। आश्चर्यचकित मुद्रा में पूछा—‘भाई ! यह क्या ? यह कैसा मजाक !’ भाई ने कहा—‘बहिन ! तू नहीं समझती। सारे कपड़े रुई से ही तो बनते हैं। मैंने मूल सामग्री दी है।’

भोजन का समय हुआ। सारे भोजन करने बैठे। सभी के थालों में मिठाई आदि खाद्य सामग्री थी। भाई के थाल में केवल गेहूं थे। भाई ने देखा। वह बोला—‘बहिन ! यह क्या ? क्या केवल गेहूं खाए जाते हैं ?’ बहिन बोली—‘भाई ! सारी सामग्री गेहूं से ही तो बनती है। मैंने मूल सामग्री परोसी है।’ भाई समझ गया।

केवल कच्ची सामग्री उपयोगी नहीं होती। पकने पर ही वह उपयोगी होती है।

इसी प्रकार मंत्र की सारी सामग्री है, किंतु यदि मंत्र की आराधना या अभ्यास नहीं किया जाता है तो सामग्री केवल सामग्री ही बनी रह जाती है। उससे कोई निष्पत्ति नहीं होती। कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। साधना बहुत जरूरी है। साधना के बाद सिद्धि की आशा की जा सकती है, किंतु बिना साधना के सिद्धि की कामना करना निरर्थक है।

मंत्र स्वयं शक्तिशाली होता है। उसका वर्ण-विन्यास, अक्षर-संरचना शक्तिशाली होती है। एक-एक अक्षर इतना शक्तिशाली होता है कि जिसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती। आप इसे दर्शन की गहराइयों में जाकर समझें। वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर ‘अ’, ‘आ’ आदि अनन्त

पर्यायों से युक्त होता है। प्रत्येक अक्षर के अनन्त पर्याय हैं। अनन्त अवस्थाएं घटित होती हैं। हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। अक्षर अर्थात् अक्षरणाशील। उसका कभी क्षरण नहीं होता। अक्षर तीन हैं— परमात्मा अक्षर है, आत्मा अक्षर है और वर्णमाला का वर्ण अक्षर है। इनका कभी क्षरण नहीं होता।

अक्षर की अनन्त पर्याय हैं। यह बात सामान्यतः समझ में नहीं आती। एक छोटा-सा बच्चा भी 'अ', 'आ' 'क', 'ख' रट लेता है। इससे भाषा का विकास होता है। भाषा के द्वारा विचारों का विनिमय होता है। इतनी बात तो समझ में आ जाती है, किन्तु एक-एक अक्षर के अनन्त पर्याय हैं, उसकी अनन्त शक्ति है, यह बात समझ में नहीं आती। एक आचार्य ने इस तथ्य को समझाने के लिए एक ग्रन्थ का निर्माण किया। उसका नाम है—'अष्टलक्षी'। उसमें आठ अक्षरों का प्रयोग है—'राजा नो ददते सौख्यम्'। आचार्य ने इस पद के आठ लाख अर्थ किए हैं। उन्होंने लिखा है—'मेरे जैसा अल्पज्ञानी व्यक्ति इसके आठ लाख अर्थ कर सका है। कोई सिद्ध ज्ञानी इसके अनन्त अर्थ कर सकता है।'

यह एक छोटा-सा उदाहरण है। इससे हम अक्षर की अनन्त क्षमता को समझ सकते हैं। मंत्र छोटा होता है, पर उसमें अनन्त शक्ति होती है। बरगद का बीज बहुत छोटा होता है। प्रारंभ में कोई यह कल्पना नहीं कर सकता कि इतना छोटा बीज इतना बड़ा वटवृक्ष बन जाएगा, जिसकी छांह में सैकड़ों घोड़े बांधे जा सकते हैं। इतने बड़े-बड़े बरगद के पेड़ भारत में मौजूद हैं।

आप स्वयं इसका अनुभव करें। 'रं', 'रं' को लें। इनका उच्चारण करें। मात्र उच्चारण, मात्र ध्वनि। इनके साथ मंत्र की भावना न भी जोड़ें, इसके साथ अन्तर्ध्वनि को न भी जोड़ें, एकाग्रता को भी जोड़ें, केवल रं, रं, रं की ध्वनि करते जाएं। कुछ ही समय के बाद आप अनुभव करने लगेंगे कि आपके शरीर में ऊष्मा बढ़ रही है, ताप बढ़ रहा है। शरीर जलने लगा है।

ध्यान-काल में कई प्रकार के अनुभव होते हैं। किसी साधक को सूर्य का प्रतिबिम्ब दीखने लगता है तो किसी को चन्द्रमा का पूर्ण विम्ब दृग्गोचर होता है। किसी को अत्यधिक गर्मी का अनुभव होता है तो किसी को

अत्यधिक शीत का अनुभव होता है। और भी अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। ये सारे अनुभव संकल्पशक्ति, वर्णशक्ति या प्रेक्षाशक्ति के परिणाम हैं। ये अनुभव बहुत बड़े अनुभव नहीं हैं। ये परिणाम प्रारंभिक हैं। ये बहुत बड़ी उपलब्धियां नहीं हैं। जब हमने यह मान लिया कि हमारे स्थूल शरीर के भीतर तैजस शरीर बैठा है, तेज का पुंज विद्यमान है, उसके जागरण से यदि कुछ प्रकाश मिल जाए तो कौन-सी बड़ी बात है ? कोई बड़ी बात नहीं है। यह जो नहीं दीखती है, वह बड़ी बात है। जो दीखती है वह बड़ी बात नहीं है। जब हम बाहर ही बाहर देखते हैं, मन को भीतर ले जाते ही नहीं, मन को दौड़ाते ही रहते हैं, कभी रोकते नहीं, तब कुछ भी दिखाई नहीं देता। जब हम मन की दिशा को मोड़ देते हैं, बाहर से भीतर ले जाते हैं, उसकी दौड़ को समाप्त कर उसे एक खूंटे-से बांध देते हैं, तब वह प्रकाश दीखना सामान्य हो जाता है। यद्यपि यह सामान्य-सी बात है, फिर भी इसका अपना महत्त्व है, क्योंकि इससे आदमी का दृष्टिकोण बदल जाता है। आदमी की श्रद्धा गाढ़ हो जाती है, आस्था दृढ़ हो जाती है। जब तक अपना कोई अनुभव नहीं होता तब तक आदमी को लगता है कि उसकी साधना फल नहीं ला रही है। अनुभव छोटा हो या बड़ा, वह बहुत काम का होता है।

जीवन की दिशा का परिवर्तन और दृष्टिकोण का परिवर्तन—यह प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन है। प्रेक्षा-ध्यान से यह घटित होता है। मंत्र की आराधना भी प्रेक्षा-ध्यान का ही एक अंग है। प्रेक्षा-ध्यान की पूरी प्रक्रिया दृष्टिकोण बदलने की प्रक्रिया है। जब दृष्टि बदल जाती है तब जीवन की दिशा अपने-आप बदल जाती है, कुछ भी उपदेश की जरूरत नहीं होती।

मैंने यह अनुभव किया है कि साधना से सचमुच व्यक्ति बदल जाता है। यह बदलाव घटित होता है आन्तरिक परिवर्तन से। व्यक्ति अनुभव के क्षण में जाग जाता है। अनुभव के आगे तर्क चलता नहीं। व्यक्ति कितना ही पढ़ा-लिखा या तार्किक हो, जब वह एक अनुभव की स्थिति से गुजर जाता है, तब उसके सारे तर्क निरस्त हो जाते हैं। अनुभव को उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। तर्क उस अनुभव को नहीं काट सकते। एक व्यक्ति तर्क को सहारा बनाकर चला। साधना का क्रम चलता रहा। दो-चार दिन उसे कुछ भी हाथ नहीं लगा। एक दिन ध्यान-काल में

अकस्मात् कोई अनुभव जागा और उसकी तार्किक दृष्टि समाप्त हो गई। वह बदल गया।

चेतना के चार स्तर हैं :

१. इन्द्रिय-चेतना का स्तर।
२. मानस-चेतना का स्तर।
३. बौद्धिक-चेतना का स्तर।
४. अनुभव-चेतना का स्तर।

इन्द्रिय-चेतना के स्तर से ऊपर है मानस-चेतना का स्तर और उससे ऊपर है बौद्धिक-चेतना का स्तर और उससे भी ऊपर है अनुभव-चेतना का स्तर। यह प्रधान है।

इन्द्रिय-चेतना सामाजिक संपर्कों से विकसित होती है। मानस की चेतना सामाजिक संपर्कों और शिक्षा के वातावरण में संपन्न होती है। बौद्धिक चेतना सामाजिक सम्पर्कों और विशेष अध्ययन—चिन्तन-मनन के द्वारा विकसित होती है। किन्तु अनुभव की चेतना एक मात्र दिशा बदलने से ही विकसित होती है। जब तक मन की दिशा को मोड़कर बाहर से भीतर की ओर नहीं किया जाता, तब तक अनुभव की चेतना विकसित नहीं होती, फिर चाहे व्यक्ति पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़, उच्च स्तर पर जीने वाला हो या सामान्य स्तर पर। ऐसे व्यक्ति को अनुभव नहीं हो सकता। जब तक अनुभव नहीं होता, तब तक व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि यह मेरा अनुभव है। मैंने इसे साक्षात् किया है। उसका अपना कुछ भी नहीं होता। वह केवल उधार ली हुई बातों को दोहराता जाता है, उधार देता जाता है और वह उधार वाली बात आगे चलते-चलते इतनी दूर चली जाती है कि मूल का कहीं पता नहीं लगता। हम सब इस स्थिति में जी रहे हैं। एक व्यक्ति किसी से शास्त्र उधार लेता है और दूसरों को बांट देता है। यह क्रम चलता रहता है। यह क्रम इतना दूर चला जाता है कि यह सोचने का मौका ही नहीं मिलता कि मूल क्या है ? आज के युग की सबसे बड़ी मांग या जरूरत यह है कि मूल पूंजी पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो, अनुभव पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो। हम महावीर को इसलिए तीर्थंकर मानते हैं कि उन्होंने अनुभव किया, साक्षात्कार किया और फिर

लोगों को बताया। जितने अवतार, आचार्य, तपस्वी और साधक हुए हैं, उनकी वाणी को लोग इसलिए शिरोधार्य करते हैं कि उन्होंने सत्य का पहले साक्षात्कार किया, अनुभव किया और फिर लोगों को बताया। किन्तु आज लोग उधार ली हुई बातों के आधार पर अपनी यात्रा को चला रहे हैं। जीवन-यात्रा को ही नहीं, वे धर्म की यात्रा को भी उधार के बल पर ही चला रहे हैं। यह एक आश्चर्यकारी बात है।

साधना करने वाले लोग इस भ्रांति से निकलकर सत्य के साक्षात्कार की ओर चलने का संकल्प लेकर चलते हैं। वे मूल पूंजी को खोजने के लिए प्रयत्न करते हैं। केवल उधार से काम चलाने में उन्हें संतोष नहीं होता। वे मूल को पाने लिए प्रयत्न करते हैं। दरवाजा खुलता है और गति प्रारंभ हो जाती है। किन्तु पहुंचना बहुत दूर है। एक चरण आगे बढ़ने-मात्र से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। जब चरण निरन्तर चलते हैं तब लक्ष्य निकट आ जाता है।

मैंने पहले कहा था कि 'णमो अरहंताणं' के अक्षर-अक्षर का ध्यान करें। धीरे-धीरे चमकते हुए श्वेत वर्ण के अक्षर साक्षात् हो जाएंगे। इसके लिए निरन्तर अभ्यास करना होगा। अभ्यास-काल तीन महीने का भी हो सकता है और छह महीने का भी हो सकता है और भी अधिक हो सकता है। धीरे-धीरे उसकी निष्पत्ति सामने आने लगेगी। उतावली न करें। उतावलापन साधना का विघ्न है। धैर्य अपेक्षित होता है। आज के युग की सबसे बड़ी बीमारी है—उतावलापन।

आज के आदमी में धैर्य नहीं है। वह बीमार होता है प्रातःकाल और स्वस्थ हो जाना चाहता है शाम तक। प्रत्येक क्षेत्र में यह उतावलापन है। युग ने विकास किया है। युग की रफ्तार बढ़ी है। ऐसी स्थिति में आदमी इन्तजार करता रहे, यह संभव नहीं है। पहले के जमाने में आदमी घर से निकलता और दो-तीन महीनों के बाद कलकत्ता पहुंच जाता। आज का आदमी कलकत्ता जाने के लिए दो-तीन महीने तो क्या, दो-तीन दिन की भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। वह दो-तीन घंटों में ही वहां पहुंच जाना चाहता है और आज पहुंच भी जाता है। बात बहुत स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि प्रेक्षा-ध्यान की साधना में, मंत्र की आराधना में हम वर्तमान युग के इस प्रभाव को, उतावलेपन को, अधैर्य को, काम में न लें। यह शाश्वत सत्य

१०८ : एसो पंच णमोक्कारो

है। शाश्वत के साथ कोई समझौता नहीं हो सकता, कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। साधक धैर्य रखें, प्रतीक्षा करें, उतावले न हों। जो लक्ष्य चुना है, जीवन का ध्येय बनाया है, उस पर पूरे आत्म-विश्वास के साथ चलें, धैर्य से चलते जाएं, शक्ति का विकास करें। ऐसी स्थिति में निश्चित ही एक दिन लक्ष्य तक पहुंच जाएंगे।

११. ओम्

- अभिव्यक्ति के दो साधन—अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत ।
- शब्द ज्ञान का वाहक ।
- शब्द का प्रकाश डालने वाले दो शास्त्र—शब्दशास्त्र और मंत्रशास्त्र ।
- मंत्रशास्त्र के अनुसार शब्द की तीन अवस्थाएं—संजल्प, अन्तर्जल्प और ज्ञानात्मक ।
- अक्षर के तीन प्रकार ।
- सोऽहं का महत्त्व ।
- ओम् की निष्पन्नता के विविध दृष्टिकोण ।
- ओम् एकाक्षरी मंत्र । इसके जाप से होने वाला लाभ ।
- मंत्र-जाप में उच्चारण का महत्त्व ।
- ओंकार के साथ रंगों का योग ।

•

ओंकारं विंदुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः । ।

हम सब दो प्रकार के जगत् में जीते हैं। एक हमारा आध्यात्मिक जगत् है, आंतरिक जगत् है और दूसरा बाह्य जगत्। अन्तर्जगत् में हम अकेले होते हैं और बाह्य जगत् में हमारा समाज होता है। हमारा ज्ञान का जीवन अन्तर् जगत् है। वह सदा भीतर रहता है, कभी बाहर नहीं आता। यदि मनुष्य कोरा ज्ञानी ही होता तो वह नितांत अकेला होता। वह सामाजिक

कभी नहीं बनता। हमारा सामाजिक जीवन बनता है भाषा के द्वारा, शब्द के द्वारा। ज्ञान और भाषा का जब से योग हुआ है तब से मनुष्य बाह्य जगत् में आया और उसने अपना विस्तार किया। शब्द ने मनुष्य को विस्तार दिया, बाह्य जगत् का निर्माण किया और एक द्वैत पैदा किया। मनुष्य दो जगत् में जीने वाला प्राणी बन गया।

ज्ञान अपने-आप में स्थाप्य होता है। उसके द्वारा किसी को भी अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती। केवल जाना जा सकता है, पर अपना जाना हुआ दूसरे तक नहीं पहुंचाया जा सकता। ज्ञान जब दूसरे तक नहीं पहुंचता तब समाज नहीं बनता। समाज का मूल आधार है अभिव्यक्ति, ज्ञान का विनिमय, प्रत्येक के ज्ञान का प्रत्येक तक पहुंचना।

अभिव्यक्ति के दो साधन हैं। शास्त्रीय शब्दावली में उन्हें अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत कहा जाता है। हम अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाते हैं या तो अक्षर के द्वारा या अनक्षर के द्वारा—संकेत के द्वारा। अंगुली का एक इंगित किया जाता है और दूसरा व्यक्ति मन के भाव को जान लेता है। तर्जनी हिलती है और सामने वाला व्यक्ति तर्जना का अनुभव कर लेता है। अंगूठा हिलता है और सामने वाला व्यक्ति अपने प्रति किए जाने वाले व्यंग्य का अनुभव कर लेता है। हमारे शरीर और अवयवों के इंगित अपना अर्थ समझा देते हैं। फिर भी वह अनक्षर श्रुत इतना कम अर्थ समझा पाता है कि उससे हमारा पूरा व्यवहार नहीं चलता, बहुत थोड़ा व्यवहार चलता है। यदि यह अनक्षर श्रुत ही होता, यदि संकेतों के माध्यम से ही मनुष्य अपने मन की भावनाओं को व्यक्त कर पाता तो वह आज के विकास बिन्दु तक कभी नहीं पहुंच पाता। विकास का बड़ा स्रोत है—अक्षरश्रुत। आज जितना विकास हुआ है, उसका माध्यम है अक्षर, शब्द या भाषा। भाषा के द्वारा अपने मन की बात को व्यक्त करने में सहज सुविधा होती है और मनुष्य अपनी सारी भावना को दूसरों तक पहुंचा देता है, दूसरों को समझा देता है। ज्ञान और विज्ञान का समूचा विकास, संस्कृति का समूचा विकास, मानव जाति का समूचा विकास भाषा के माध्यम से हुआ है। इसकी दार्शनिक प्रक्रिया को भी समझ लें। हमारे भीतर चेतना है। वह अपने-आप में सक्रिय रहती है। बाह्य वस्तु के लिए निष्क्रिय भी रहती है। चेतना की सत्ता एक लब्धि है, एक उपलब्धि है। वही चेतना जब बाह्य जगत् को

जानने के लिए सक्रिय होती है तब उपयोग बन जाती है। ज्ञान की दो अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है उसका अनावृत होना और दूसरी अवस्था है ज्ञेय को जानने में सक्रिय होना। ये दोनों अवस्थाएं अन्तरजगत् की अवस्थाएं हैं। ये बाह्य जगत् में कभी प्रकट नहीं होतीं। ये अमूर्त हैं। इनका स्वरूप हमारे सामने नहीं आता। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के ज्ञान को कभी समझ नहीं पाता, कभी पकड़ नहीं पाता। अन्तर जगत् और बाह्य जगत् के मध्य में तीन सेतु हैं—शरीर, वाणी और मन। ये अन्तर जगत् के प्रकार को बाह्य जगत् तक पहुंचाते हैं। अमूर्त जब मूर्त के साथ जुड़ता है, तब वह श्रुत बनता है। शास्त्र, आगम या वाङ्मय बनता है। मन, मन से आगे वाक् और वाक् से आगे काय—इन तीनों के कर्म जुड़े हुए हैं। मन में कोई विचार पैदा हुआ और वह वाक् में उतरा, वाङ्मय बना, वाणी में आया। उसे वाणी में आने के लिए काया के तंत्र ने उसका पूरा सहयोग किया। उच्चारण के स्थान, जिनसे शब्द उच्चरित होते हैं, सक्रिय बने और मन का भाव प्रकट हो गया। जो अगम्य था वह गम्य बन गया, जो अन्तरजगत् में था वह बाह्यजगत् में आ गया।

मैंने मन में सोचा—मुझे वहां जाना है। किन्तु जब मैंने भाषा के द्वारा प्रकट कर दिया कि मुझे वहां जाना है, तब वह अन्तरजगत् की घटना नहीं रही, वह बाह्य जगत् की घटना हो गई। मन की अगम्य बात दूसरों के लिए गम्य बन गई।

शब्द की शक्ति के द्वारा हमारा ज्ञान बाह्य जगत् में अवतरित होता है। यदि शब्द का वाहन न मिले तो ज्ञान भी कभी भी बाह्य जगत् में अपने अस्तित्व को प्रकट नहीं कर पाता। यह है ज्ञान और शब्द का संबंध।

शब्द पर शब्दशास्त्रियों ने काफी विमर्श किया है। दूसरी ओर मंत्रशास्त्रियों ने भी काफी विमर्श किया है। शब्द पर दो शास्त्र प्रकाश डालते हैं—शब्दशास्त्र और मंत्रशास्त्र। ज्ञान भीतर होता है। वह शब्द के माध्यम से बाहर आता है। ज्ञान भीतर पहुंचता है तब भी शब्द के माध्यम से पहुंचता है। दूसरा व्यक्ति मुझे कुछ बताता है, जिसे मैं नहीं जानता। वह बात मुझे शब्द के माध्यम से उपलब्ध हुई। शब्द ने भीतर की यात्रा शुरू की और वह मेरे ज्ञान के साथ जुड़ गया। ज्ञान का स्पर्श कर अपने अर्थ को वहां तक पहुंचा दिया। यह प्रक्रिया है ज्ञान की बाहर से भीतर तक

पहुंचने की। मेरे भीतर का ज्ञान भी इस प्रक्रिया से दूसरे तक पहुंचता है। मेरा ज्ञान मेरे भीतर रहता है और दूसरे का ज्ञान दूसरे के भीतर रहता है, किन्तु शब्द के माध्यम से हम ज्ञान का विनिमय कर देते हैं, एक-दूसरे के ज्ञान को अपना बना लेते हैं। यह हमारा ज्ञान-मीमांसा और शब्दशास्त्रीय मीमांसा का पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष साधना का है, मंत्रशास्त्र का है। मंत्रशास्त्र के अनुसार शब्द की पहली अवस्था है—संजल्प, जो तेज स्वर में बोला जाता है। यह भाष्यावस्था—बोली जाने वाली अवस्था है। दूसरी अवस्था है—अन्तर्जल्प, जब शब्द बाहर सुनाई नहीं देता अथवा उच्चरित नहीं होता तब अन्तर्जल्प होता है। तीसरी अवस्था ज्ञानात्मक है। वहां अन्तर्जल्प भी समाप्त हो जाता है, भाषा ज्ञान के रूप में शेष रह जाती है। मंत्रशास्त्र में वाक् को बैखरी, वाक्-प्रयोग (वचनयोग) को मध्यमा और ज्ञानावरण के विलय या ज्ञान के उपयोग को पश्यंती कहा जाता है। वह ज्ञान जब लब्धि में चला जाता है, ज्ञान की सहज क्षमता में बदल जाता है तब वह परावाक् बन जाता है। ज्ञान की यह सारी यात्रा अक्षर के द्वारा होती है। अक्षर का कभी क्षरण नहीं होता। प्रत्येक मनोविज्ञानी व्यक्ति में अक्षर का बोध होता है। सोते-जागते वह ज्ञान अव्यक्त या व्यक्त रूप में उपस्थित रहता है।

अक्षर तीन प्रकार के होते हैं—

१. संज्ञा अक्षर—अक्षर की आकृति।
२. व्यंजन अक्षर—अक्षर का उच्चारण।
३. लब्धि अक्षर—अक्षर का ज्ञान।

ज्ञानात्मक क्षमता वाला अक्षर लब्धि अक्षर होता है। व्यंजन अक्षर वाक् के रूप में प्रकट होता है। अपने वाच्य अर्थ को बाह्य जगत् में प्रकट करता है। संज्ञा अक्षर एक निश्चित आकार का होता है, जो लिपि में प्रयुक्त होता है। लिपि का भी बड़ा महत्त्व है। हम जितनी भी रेखाएं खींचते हैं उन रेखाओं का बड़ा महत्त्व होता है। छोटी-सी रेखा खींचते हैं और उसमें एक विशेष प्रकार की क्षमता आ जाती है। आकार और मुद्रा का भी मूल्य कम नहीं है। आदमी सिंहासन की मुद्रा में बैठता है। एक आकार बनता है और ठीक पिरामिड का आकार बन जाता है। पिरामिड के आकार में कोस्मिक रे को पकड़ने की क्षमता आ जाती है। हम उस दुनिया में जीते हैं जहां

समूचे सौरमंडल के विकिरण हम तक पहुंचते हैं। विभिन्न मुद्राओं और विभिन्न आकृतियों में विभिन्न सौर विकिरणों को ग्रहण करने की क्षमता होती है। जब हम सिद्धासन की मुद्रा में होते हैं तो एक विशिष्ट प्रकार के विकिरणों को ग्रहण करते हैं। जब हम 'अ' का लिपि-विन्यास करते हैं, 'अ' को लिखते हैं तब 'अ' अक्षर लिखते ही उसके माध्यम से विशिष्ट प्रकार के विकिरणों को ग्रहण करने लग जाते हैं। जब 'उ' का लिपि-विन्यास करते हैं तब दूसरे प्रकार के विकिरणों को ग्रहण करने लग जाते हैं। इस परिस्थिति के संदर्भ में, वाक् और अर्थ के संदर्भ में, ज्ञान और शब्द के संदर्भ में जब हम 'ओम्' पर विचार करते हैं तो लगता है कि यह शब्द अपने आप में बहुत मूल्यवान् है। शब्द की मूल्यवत्ता पर हमने दो दृष्टियों से विचार किया है। एक है—शब्द की प्राणशक्ति की समयोजना, प्राणशक्ति के साथ होने वाला शब्द का संबंध और दूसरी है—भावनात्मक विशेषता, उसके पीछे हमारी क्या भावना जुड़ी होती है। पहला प्रश्न है प्राणवत्ता का। हम जो कुछ कर रहे हैं, वह सारा का सारा कार्य प्राणशक्ति के द्वारा कर रहे हैं। तैजस शरीर के माध्यम से प्राण की धारा निःसृत होती है। वह हमारे समूचे जीवन-तंत्र को संचालित करती है। प्राण की धारा या विद्युत् की धारा जितनी बलवती होती है उतनी ही हमारी क्षमताएं बढ़ जाती हैं। हम निरन्तर श्वास लेते हैं। श्वास प्राण का ईंधन है। उसके द्वारा प्रज्वलित होता है। हम निरन्तर श्वास लेते हैं, इसीलिए हमारा तंत्र निरन्तर गतिशील रहता है। योगशास्त्रीय गणना के अनुसार एक व्यक्ति एक दिन में इक्कीस हजार छह सौ श्वास-प्रश्वास लेता है। जब वह श्वास लेता है तब एक प्रकार की ध्वनि होती है। श्वास छोड़ता है तब भी ध्वनि होती है। श्वास छोड़ते समय 'ह' की और लेते समय 'स' की ध्वनि होती है। इन सहज दोनों ध्वनियों के आधार पर 'सोऽहं' का विकास हुआ। इसे 'अजपाजप' कहा जाता है। इसे जपने की जरूरत नहीं। यह बिना जपे जप हो जाता है, इसलिए इसका नाम 'अजपा' है। शिवस्वरोदय में 'हकार' को शिवरूप और 'सकार' को शक्तिरूप माना गया है। हठयोग में 'हकार' सूर्य या दक्षिण स्वर का प्रतिनिधित्व करता है और 'सकार' चन्द्र या बायें स्वर का प्रतिनिधित्व करता है। इन दोनों का सांध्य होने पर परमात्मभाव का विकास होता है। तंत्रशास्त्र के अनुसार पूर्ण वर्णमाला

ओंकार से उत्पन्न होती है। इसीलिए उसे 'मातृकासू' कहा जाता है।

'सोऽहं' का महत्त्व अपनी ध्वनिगत विशेषता के कारण है। प्राणशक्ति के साथ उसका स्वाभाविक संबंध है, इसलिए उसका महत्त्व है। उसके साथ भावना का संबंध भी जुड़ा हुआ है। 'सोऽहं' का अर्थ होता है—मैं वह हूँ। जो परमात्मा है वह मैं हूँ। इस भावनात्मक संबंध के कारण 'सोऽहं' एक बहुत शक्तिशाली मंत्र बन गया। ध्वनिगत विशेषता और भावनात्मक संवेदना के कारण इसका स्थान महामंत्रों की कोटि में प्रस्थापित है।

'सोऽहं' में थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ। 'साकार' को हटाया, 'हकार' को हटाया और 'ओम्' बन गया। 'सोऽहं' का परिवर्तित रूप है 'ओम्', जो भाषाशास्त्रीय दृष्टि और ध्वनि विश्लेषण के अनुसार 'सोऽहं' के बहुत निकट है। 'स' और 'ह' चले जाते हैं और शेष 'ओम्' रह जाता है। 'ओम्' हमारी प्राणगत ध्वनि है। प्राण के साथ सहज उच्चरित होने वाली ध्वनि है। इसलिए इसका बहुत मूल्य है। 'ओम्' का पर्याय शब्द है 'प्रणव'। महर्षि पतंजलि ने इसे पुरुष का वाचक बतलाया है। 'प्रणव' प्राण को देने वाला होता है। वह हमारी प्राणशक्ति को जागृत करता है। 'ओंकार' हमारी प्राणशक्ति को प्रज्वलित करने वाला है, इसलिए उसका बहुत मूल्य है। वैज्ञानिक युग में जितना ऊर्जा का मूल्य है उतना ही हमारी आंतरिक शक्ति के विकास में, जीवनतंत्र के परिचालन में इसका मूल्य है। इस प्राकृतिक मूल्य के साथ साधना की परंपराओं ने भावनात्मक मूल्य का भी योग किया है। वैदिक परंपरा में 'अ, उ, म्,'—इन तीन अक्षरों के योग से ओम् शब्द निष्पन्न होता है। 'अ' ब्रह्मा, 'उ' विष्णु और 'म्' महेश—ये तीनों शक्तियां इसके साथ जुड़ी हुई हैं। वैदिक परंपरा का अनुयायी 'ओंकार' का जप करते समय अपनी प्राकृतिक प्राणशक्ति का उपयोग करता है और साथ-साथ अपने में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्ति का अनुभव करता है। एक ओर उसकी प्राणशक्ति जागृत होती है तो दूसरी ओर उसकी आंतरिक शक्तियां भी संवेदनशीलता के कारण प्रकट होती हैं।

जैन परंपरा में 'ओम्' पंच परमेष्ठी के पांच वर्णों से निष्पन्न होता है। अर्हत्, अशरीर, आचार्य, उपाध्याय और मुनि—इन पांच परमेष्ठियों के आदि अक्षरों का योग करने पर 'ओम्' बनता है —अ+अ+आ+उ+म्=ओम्। पूरा नमस्कार महामंत्र ओंकार में गर्भित है। एक जैन व्यक्ति 'ओंकार' का

जप करते समय प्राणशक्ति से लाभान्वित होता ही है और साथ-साथ पंच परमेष्ठी से अपनी तन्मयता का अनुभव करता है, अपने शरीर के कण-कण में परमेष्ठी पंचक की अवस्थाओं का अनुभव करता है। यह तादात्म्य होता है तब आंतरिक शक्तियां उसी रूप में विकसित होने लगती हैं। जहां तक प्राणशक्ति का संबंध है, दोनों परंपराओं में कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि वह शरीर के साथ जुड़ी हुई घटना है। जहां भावनात्मक शक्ति का प्रश्न है वहां अपनी-अपनी भावना के अनुसार परिवर्तन घटित होने लगता है।

जैन आचार्यों ने 'ओम्' की निष्पत्ति का एक दूसरा रूप भी प्रस्तुत किया है। अ—ज्ञान, उ—दर्शन और मू—चारित्र्य का प्रतीक है। इन तीन वर्णों से निष्पन्न (अ+उ+मू) ओंकार त्रिरत्न का प्रतीक है। ओंकार की उपासना करने वाला मोक्षमार्ग की उपासना करता है, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य—तीनों की उपासना करता है। यह भावनात्मक संबंध है। इस प्रकार 'ओम्' समूची वर्णमाला और मात्रिक अक्षरों में एक मूर्धन्य अक्षर बन गया।

शब्द उच्चारण का एक बहुत बड़ा विज्ञान है। मंत्रशास्त्र ने उस पर बहुत प्रकाश डाला है। ओंकार के उच्चारण से जमे हुए मल धुल जाते हैं। साधना का प्रयोजन होता है मन को निर्मल करना, मन पर प्रतिदिन जमने वाले मैलों को दूर करना। जब मैल दूर होते हैं तब आन्तरिक व्यक्तित्व बदलता है, नाड़ी-संस्थान निर्मल होता है। यह चेतना की सक्रियता क्या चमड़ी में है ? नहीं। हड्डियों में है ? नहीं। मांस में है ? नहीं। वह नाड़ी-संस्थान में है। जिसका नाड़ी-संस्थान जितना निर्मल होता है वह उतना ही ज्ञानवान् और क्रिया में सक्षम होता है। नाड़ी-संस्थान में प्राणधारा के तीन मुख्य स्रोत हैं। योग की भाषा में इन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता है। हमारी चेतना के ऊर्ध्वगमन में, अन्तश्चेतना के विकास में सुषुम्ना का बड़ा योग है। हमारी ज्ञान की शक्ति और कर्म की शक्ति सुषुम्ना से विकीर्ण होकर बाहर फैलती है। जब प्राण का प्रवाह इड़ा और पिंगला के मार्गों से हटकर सुषुम्ना में प्रवेश करता है तब हमारी अतीन्द्रिय शक्तियां जागृत होती हैं, चेतना का ऊर्ध्वगमन होता है, वासनाएं कम होती हैं, कामनाएं कम होती हैं, रासायनिक परिवर्तन घटित हो जाता है, ग्रन्थियों के स्राव बदल जाते हैं, व्यक्तित्व का रूपान्तरण हो जाता है। जिस व्यक्ति से हम अच्छे आचरण

की आशा नहीं कर सकते, वह व्यक्ति सुषुम्ना या मध्यमार्ग में प्राणधारा प्रवाहित होने पर अपने-आप अच्छा आचरण करने लग जाता है। किसी उपदेश की जरूरत नहीं, किसी को समझाने की जरूरत नहीं। सुषुम्ना के जागरण द्वारा आचरण की शुद्धि अपने-आप हो जाती है और उसके जागरण में ओंकार के जप का बहुत बड़ा योग हो सकता है। ओंकार का जप तीनों स्थितियों में चलता है—वाक् के रूप में, वाक् से अन्तरजल्प के रूप में और सुषुम्ना में प्रवेश कर ज्ञान के रूप में। जब हमारी चेतना प्राणधारा के साथ प्रवाहित होने लग जाती है उस स्थिति में व्यक्तित्व में सहज ही परिवर्तन घटित होता है, जिसकी हम पहले कल्पना भी नहीं कर सकते।

शब्द की शक्ति कम नहीं होती। उसकी ध्वनि-तरंगें बंद पड़े दरवाजों को खोल देती हैं, अज्ञात ज्ञात हो जाता है, शक्तिहीनता शक्तिस्रोत में बदल जाती है, दुःख सुख में बदल जाता है। भगवान् महावीर ने गौतम गणधर को 'उप्पन्ने इ वा विगमे इ वा धुवे इ वा'—इस त्रिपदी का मंत्र दिया। इसके माध्यम से उनकी अन्तश्चेतना जाग उठी। उन्होंने समूचे श्रुत का अवगाहन कर लिया। ज्ञान के सब द्वार खुल गए। शब्द में उतर सकने वाला ज्ञान उनसे अज्ञात नहीं रहा। वे श्रुत के पारगामी बन गए।

चिलातीपुत्र बहुत बड़ा चोर था। उसने एक कन्या की हत्या कर डाली। हाथ में उसका सिर है और तलवार खून से सनी हुई है। जंगल में दौड़ा जा रहा है। पुलिस पीछा कर रही है। उसने देखा, एक साधु ध्यान-मुद्रा में खड़ा है। साधु के पास जाकर बोला—कुछ बताओ। साधु ने केवल तीन शब्द उच्चारित किए—उपसम, संवेग, संवर। इन तीन शब्दों का उच्चारण हुआ और चिलातीपुत्र एकदम बदल गया। वह चोर से साधु बन गया। मंत्र-शक्ति के द्वारा उसका रूप ही बदल गया। मंत्र के द्वारा प्रकट होने वाली ऊर्जा से व्यक्ति में जो रूपान्तरण होता है, वह हम जानते हैं और मानते भी हैं। हमारी कठिनाई यह है कि हम मानते ज्यादा हैं, जानते कम हैं। ओंकार का जप करने वाले भी ओंकार को मानते ज्यादा हैं, जानते कम हैं। दूसरे मंत्रों का जप करने वालों की भी यही दशा है। इसीलिए हमें शब्द की शक्ति में, मंत्र-शक्ति में विश्वास कम है। केवल मानने से काम नहीं चलेगा, कुछ जानें। एक मंत्र के साथ बहुत बातें जुड़ी हुई होती हैं।

उन सबको जानना जरूरी होता है। ओंकार एकाक्षरी मंत्र है। यह कामना की पूर्ति करने वाला और मोक्ष देने वाला—दोनों है। इससे प्राणशक्ति का विकास होता है, इसलिए कामना पूरी होती है। इससे चित्त निर्मल होता है, इसलिए यह मोक्ष देने वाला है। हम किसी मंत्र की विशेषता से प्रभावित होकर उसका जप शुरू कर देते हैं। किन्तु समग्र जानकारी के अभाव में पूरा लाभ नहीं उठा पाते। मंत्र के जप का पहला तत्त्व है—उच्चारण कैसे करें ? जब तक उच्चारण की बात समझ में नहीं आती तब तक उससे जो होना चाहिए, वह नहीं होता। शब्द-शास्त्र के अनुसार उच्चारण के आठ स्थान हैं—वक्ष, कंठ, सिर, जिह्वामूल, दांत, नासिका, ओष्ठ और तालु। किन्तु यह बात बहुत स्थूल जगत् की बात है। इससे पहले वह उच्चारण न जाने कितनी अवस्थाओं को पार कर जाता है। उसका प्रारंभ मूलाधार या शक्तिकेन्द्र से होता है। फिर वह तैजस-केन्द्र, आनन्द-केन्द्र और विशुद्धि-केन्द्र को पार कर तालु के पास आता है और दर्शन-केन्द्र—भृकुटि के मध्य तक पहुंच जाता है। उस स्थिति में उसकी तेजस्विता प्रकट होती है। उच्चारण के बारे में सम्यग्ज्ञान नहीं होता है तो जप से जिस लाभ की आशा की जाती है, वह घटित नहीं होता। मंत्र-शास्त्र वतलाते हैं—भाष्य-जप से जो लाभ होता है उससे हजार गुना लाभ अन्तर् जप से होता है और अन्तर् जप से जो लाभ होता है, उससे हजार गुना लाभ मानसिक जप से होता है। लाभ की दूसरी स्थिति है भावना का नियोजन। जप के साथ हमारा भावात्मक नियोजन कैसा है ? यदि हम केवल शब्द के साथ चलें, अर्थ की भावना न करें तो जो लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। जप की यात्रा शब्द से शुरू होती है। फिर शब्द छूट जाता है, केवल अर्थ शेष रह जाता है। हम श्रोतृ भावना को छोड़कर आर्थी भावना तक पहुंच जाते हैं—ज्ञानात्मक स्थिति में पहुंच जाते हैं। उस समय मंत्र चैतन्य होता है—मंत्र का जागरण होता है, उसकी तेजस्विता प्रकट होती है।

ओंकार के साथ रंगों का समायोजन करने से उसका जप और शक्तिशाली हो जाता है। शांति, पुष्टि और मोक्ष के लिए यदि ओंकार का जप करना है तो श्वेतरंग के ओंकार का जप किया जाता है। विभिन्न चैतन्य-केन्द्रों को जागृत करने के लिए विभिन्न रंगों के ओंकार का जप

करना होता है। ज्ञान-तन्तुओं को सक्रिय बनाने के लिए पीले रंग के ओंकार का जप करना होता है और ऊर्जा की वृद्धि के लिए लाल रंग के ओंकार का जप करना होता है। जप के सारे पहलुओं की समझकर यदि हम उसका प्रयोग करें तो ओंकार एक शक्तिशाली साधन है—आत्माभिव्यक्ति का, मन को निर्मल करने का तथा अनेक लब्धियों और सिद्धियों को प्राप्त करने का।

जिज्ञासितम्

प्रश्न—ॐ के स्थान पर अर्हम् को महत्त्व देने का मूल कारण क्या है?

उत्तर—ॐ का महत्त्व भी कम नहीं है और अर्ह का महत्त्व भी कम नहीं है। दोनों का अपना महत्त्व है। हमारा संसार सापेक्षता का संसार है। यहां किसी एक का असीम महत्त्व नहीं होता। प्राणशक्ति को जागृत करने के लिए अर्ह का जितना महत्त्व है उतना ॐ का नहीं है। जैन परम्परा में पंच परमेष्ठी की आराधना ॐ के रूप में की जाती है और नमस्कार मंत्र के रूप में भी की जाती है, इसकी उपासना नाना रूपों में की जा सकती है। किन्तु इनका अलग-अलग उपयोग है। भिन्न-भिन्न शक्तियों को जागृत करने के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में पंच परमेष्ठी की आराधना करनी होती है। प्राणशक्ति को जागृत करने के लिए 'अर्ह' का बहुत उपयोग है। हं, हुम्, हीं, हं— इनका बहुत बड़ा महत्त्व है। प्राणशक्ति के जागरण के लिए अर्ह का चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न—हम शरीर का आलंबन नहीं लेते, उसे देखते हैं। क्या यह सही है ?

उत्तर—आलंबन लेना और देखना—दोनों एक बात है। आलंबन की भाषा में कहें तो आलंबन है और देखने की भाषा में कहें तो देखना है। मंत्र का आलंबन कहां लेते हैं, उसे देखते हैं। मंत्र के उच्चारण की बात तो बहुत स्थूल है। उसे भी हमें देखना है। यह तो जब हम प्रयोग करेंगे तब पूरा समझ में आ जाएगा। शरीर में प्रकंपन हो रहे हैं। सामान्यतः आपको कुछ भी पता नहीं चलेगा। नाड़ी पर हाथ रखते ही प्रकंपन महसूस होने लगेंगे श्वास चल रहा है। नाक पर अंगुली रखने से उसका आभास होने लग जाता है। हमारे भीतर अनेक प्रकार की ध्वनियां हो रही हैं, किन्तु हमें उनका पता ही नहीं है। हम ध्वनियों को सुन सकते हैं यदि हमारी प्राणशक्ति विकसित होती है। यदि हमारी एकाग्रता विकसित हो और हम शरीर में होने वाली, विशेषतः सुषुम्ना में होने वाली ध्वनि को सुन सकें, तो हमें ज्ञात

होगा कि कितनी विचित्र ध्वनियां हो रही हैं। भीतर ध्वनियां ही ध्वनियां हो रही हैं, प्रकंपन ही प्रकंपन है। सारा आकाश ध्वनियों से भरा पड़ा है। उन्हें पकड़ने का साधन चाहिए।

दर्शन की शक्ति के द्वारा, ज्ञान की शक्ति के द्वारा, हमारे शरीर में होने वाली ध्वनियों को सुनना तथा प्राणशक्ति या शब्द का उसके साथ अनुभव करना—यह है मंत्र की साधना।

आलंबन और देखने में कोई अन्तर नहीं है

प्रश्न—विशिष्ट उपलब्धि साधना के विकास के द्वारा की जा सकती है या विस्फोट के द्वारा ?

उत्तर—विकास और विस्फोट में कोई अन्तर नहीं है। विकास का अर्थ है—खुलना, चौड़ा होना। फूल विकसित होता है अर्थात् खुल जाता है। विस्फोट का अर्थ है—जो शक्ति एकत्रित पड़ी है, उसका खुल जाना। बिना विस्फोट हुए विकास नहीं होता। संस्कृत कोश में विकास और विस्फोट पर्यायवाची माने गए हैं। फूल का विस्फुटन होना ही विकसन होना है। विस्फोट हुए बिना विकास नहीं होता। आज सामाजिक और आर्थिक परिवेश में क्रांति की बात चलती है। समाज का विकास तभी होता है जब कुछ नये-नये विस्फोट होते रहते हैं। चाहे चिन्तन का विस्फोट हो और चाहे कर्म का विस्फोट हो। विस्फोट का अगला चरण है—विकास। चाहे हम दोनों को एक मान लें या एक को कार्य और एक को कारण मान लें। विस्फोट कारण है और विकास कार्य। विकास के लिए विस्फोट अत्यन्त आवश्यक है।

प्रश्न—क्या मंत्र की आराधना साहस को बढ़ाने में सहायक होती है ?

उत्तर—हां, मंत्र साहस बढ़ाने का माध्यम है। मैं इसे स्पष्ट करूं। हम साहस की कितनी ही गुणगाथा गाएं, बातें करें, जब ऊर्जा कमजोर है तो साहस आएगा कैसे ? जब तक तैजस शरीर, विद्युत् शरीर शक्तिशाली नहीं होता तब तक साहस की बात व्यर्थ है। जब तक बिजली का करंट तारों में पूर्ण रूप से प्रवाहित नहीं होता तब तक बल्ब नहीं जल सकता। यदि वह कुछ जलेगा भी तो उसका प्रकाश बहुत मंद होगा। साहस के लिए जितनी ऊर्जा चाहिए, वह यदि प्राप्त होती है तो साहस जाग जाएगा, अन्यथा हम साहस के हजारों गीत गाएं; बार-बार कहते रहें कि साहस रखो,

साहस रखो, कुछ भी होना नहीं है। पेट की अग्नि यदि मंद है तो पौष्टिक भोजन पचेगा नहीं, विकार बढ़ाएगा। अग्नि यदि तेज होती है तो सब कुछ खाया-पीया भस्म हो जाता है। मंत्र से ऊर्जा बढ़ती है। जब ऊर्जा बढ़ती है तब साहस भी जाग उठता है।

प्रश्न—क्या ऊर्जा घटती-बढ़ती रहती है या समान रहती है ? ऊर्जा के घटने-बढ़ने के कारण क्या हैं ?

उत्तर—ऊर्जा समान नहीं रहती। वह कभी घटती है और कभी बढ़ती है। वह आन्तरिक कारणों से भी घटती-बढ़ती रहती है और बाहरी कारणों से भी घटती-बढ़ती है। उपयुक्त निमित्त मिलते हैं तो वह बढ़ जाती है। दिन में जो ऊर्जा होती है, वह रात में नहीं होती। सूर्य के आतप में जो ऊर्जा सक्रिय होती है, वह रात में सक्रिय नहीं होती। एक प्रश्न आया कि जैनों में रात्रि-भोजन का जो निषेध है उसके पीछे वैज्ञानिक दृष्टि क्या है ? मैंने कहा—जैन आचार्यों ने कहा है कि रात को हमारा तैजसकेन्द्र, अग्नि का तंत्र सिकुड़ जाता है, उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है, इसलिए रात को खाया गया भोजन उचित रूप में नहीं पचता। अपचा हुआ भोजन विकृतियां पैदा करता है। बहुत वैज्ञानिक बात है। वायु का दर्द भी दिन में कम महसूस होता है, रात में उसकी उग्रता बढ़ जाती है। सूर्य की किरणों से जो परमाणु शरीर को मिलते हैं, वे शक्ति पैदा करते हैं, पीड़ा कम अनुभूत होती है। जैसे ही रात आती है; शक्ति प्राप्त होना बंद हो जाता है। पीड़ा उभर आती है। कुछेक वाहरी निमित्तों से ऊर्जा घटती भी है और बढ़ती भी है। ऊर्जा के घटाव-बढ़ाव के आन्तरिक कारण भी हैं। जब मन में बुरे विचार आते हैं तब ऊर्जा घट जाती है, हमारा आभामंडल (ओरा) मलिन हो जाता है। जब विचार पवित्र होते हैं तब ऊर्जा बढ़ती है, आभामंडल पवित्र हो जाता है। अच्छे विचारों और भावनाओं के साथ तैजस शरीर की सक्रियता बढ़ती है और वह अधिक शक्ति पैदा करता है, शक्तिशाली हो जाता है।

मंत्र की आराधना पवित्र उपक्रम है इससे पवित्र विचार आते हैं, पवित्र भावना आती है। इन पवित्र विचारों से ऊर्जा बढ़ती है।

प्रश्न—जब इन्द्रियां वश में नहीं होतीं हैं, तब संकल्प-शक्ति का विकास हो सकता है ? जब संकल्प-शक्ति का विकास होता है तब क्या इन्द्रिय और

चित्त की एकाग्रता की बात सध सकती है ?

उत्तर—बहुत टेढ़ा प्रश्न है। एक बच्चा पहले दिन चलना शुरू करता है। हम निश्चित मानते हैं कि जब तक पैरों में वह शक्ति नहीं होती, वह नहीं चल सकेगा और यह भी मानते हैं कि जब तक वह नहीं चलेगा, उसके पैरों में शक्ति नहीं आएगी। दोनों बातें साथ-साथ हैं। इसका एक ही उपाय है कि बच्चा लड़खड़ाता है तो उसे अंगुली का सहारा देकर चलाएं। लड़खड़ाने दें, कोई निराशा की बात नहीं है। प्रारंभ में इसे नहीं रोका जा सकता। धीरे-धीरे बच्चा चलना सीख जाएगा। पैरों में शक्ति का संचार हो जाएगा। इसी प्रकार ध्यान का अभ्यास करें, संकल्प-विकल्प आएंगे। आने दें, कोई चिन्ता न करें, किन्तु संकल्प को दृढ़ बनाए रखें, 'मुझे ध्यान करना ही है।' थोड़ा लड़खड़ाएंगे तो संकल्प भी बढ़ेगा। जब संकल्प बढ़ेगा तो शक्ति भी बढ़ेगी। एक बिन्दु ऐसा आएगा कि संकल्प बहुत दृढ़ हो जाएगा, इन्द्रियों की ताकत भी बढ़ जाएगी, किन्तु हम उन पर संकल्पशक्ति से नियन्त्रण पा लेंगे, उनको जीत लेंगे। लड़खड़ाना और चलना—दोनों में समझौता हो। डरें नहीं, निराश न हों। बीच में समझौता न तोड़ें। विजय हमारी होगी। युद्ध की पूरी तैयारी होने पर यदि समझौता तोड़ा जाता है तो कोई बात नहीं, अन्यथा हार निश्चित है। इसी रण-नीति पर हम चलें। अभी समझौता करके चलें और जब यह लगे कि युद्ध की पूरी तैयारी हो गई है तब रणभेरी बजा दें, फिर कोई चिन्ता नहीं है।

प्रश्न—शरीर और मन की बीमारी से हम परिचित हैं, किन्तु प्राण की बीमारी क्या होती है ?

उत्तर—हमारे शरीर में जब विद्युत् का संतुलन विगड़ जाता है तब अनेक बीमारियां उत्पन्न होती हैं। मेग्नेट थेरापी और एक्वूपंक्चर थेरापी—इन दोनों में मुख्यतः इसी विषय पर ध्यान दिया गया है। बीमारियां विद्युत् के असंतुलन से पैदा होती हैं। मेग्नेट थेरापी में चुम्बक का प्रयोग इसीलिए किया जाता है कि अस्त-व्यस्त विद्युत् पुनः स्थान पर आ जाए। विद्युत् का संतुलन स्थापित होते ही बीमारी समाप्त हो जाती है। एक्वूपंक्चर में सूइयों का प्रयोग करते हैं और उनके माध्यम से विद्युत् को संतुलित किया जाता है। तैजस शरीर के स्तर पर जो बीमारियां प्रकट होती हैं, वे हमारे शरीर की प्राणशक्ति या विद्युत् शक्ति को अस्त-व्यस्त कर देती

हैं। इनकी चिकित्सा विद्युत् के संतुलन से की जाती है।

प्रश्न—जिस ध्यान में आप महामंत्र का प्रयोग करते हैं वह तो केवल ध्वनि की तरंग मात्र ही है। ऐसी ध्वनि-तरंग एक, दो, तीन—इस शब्दावली से भी पैदा की जा सकती है। परिणाम भी वही आता है जो मंत्रध्वनि से आता है। फिर हम किसी भी शब्द को महामंत्र क्यों नहीं मानें ?

उत्तर—मंत्र जब शब्द से अशब्द तक पहुंचता है तब उसमें शक्ति पैदा होती है। एक, दो, तीन जब तक शब्द हैं तब तक शक्ति शून्य हैं। इन अंकों के उच्चारण से भी कुछ परिणाम आता है, किन्तु वह मंत्र से होने वाले परिणाम के समक्ष नगण्य है। मंत्र का जो परिणाम आता है वह इस उच्चारण से परे जब मंत्र मनोमय भूमिका में चला जाता है, मानसिक उच्चारण बन जाता है और उससे भी आगे प्राण के स्तर पर पहुंचता है, प्राणमय बनता है, तब आता है। वहां पहुंचने पर उसमें असीम शक्ति पैदा होती है। यदि मैं केवल यह प्रतिपादन करता कि मंत्र-शब्द के उच्चारण मात्र से सब कुछ होता है तो वह प्रतिपादन निस्सार होता।

प्रश्न—मंत्र शब्दात्मक होता है। शब्द की तरंगों से मंत्र का लाभ मिल जाता है या उसकी अर्थ-चिन्ता भी आवश्यक है ?

उत्तर—मंत्र के शरीर से हम यात्रा प्रारंभ करते हैं और मंत्र की आत्मा तक पहुंच जाते हैं। मंत्र का शरीर है शब्द और मंत्र की आत्मा है अर्थ। हम केवल मंत्र के शरीर—शब्द को ही मंत्र न मान लें। उसकी जो आत्मा है, उसकी जो अर्थात्मा है उसे भी हमें समझना है। मंत्र-शास्त्र में केवल शब्द को मंत्र नहीं माना है। मंत्र तब होता है जब वह अर्थात्मा से जुड़ा होता है। मंत्र की साधना करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह पहले मंत्र के शरीर—शब्द का स्पर्श करे और फिर उसके माध्यम से उसकी आत्मा—अर्थ तक पहुंचे। ये दोनों मंत्र की सीमा में आते हैं। भले हम अगले चरण को प्रेक्षा मान लें, किन्तु मंत्र का जो पूरा न्यास है, फैलाव है, वह शब्द से अशब्द तक का है।

शब्द एक साधन है। शब्द की ध्वनि-तरंगें प्रकंपन पैदा करती हैं। किन्तु जो परिणाम होना चाहिए, वह नहीं होता। एक बार किसी व्यक्ति ने विवेकानन्द से कहा—‘मंत्र, बेकार है। शब्दों में शक्ति ही क्या है ?’ विवेकानन्द ने कहा—‘बड़े बेवकूफ हो, मूर्ख हो।’ इतना सुनते ही वह

व्यक्ति तमतमा उठा। उसने कहा—‘स्वामीजी ! आप इतने महान् संत होकर ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं?’ विवेकानन्द बोले—‘अभी तो तुम कह रहे थे कि शब्द में क्या पड़ा है। शब्द का कोई परिणाम नहीं होता।’ उसने स्वीकार कर लिया कि शब्द का परिणाम होता है।

प्रश्न—आत्मा शुद्ध चैतन्य है। उसमें से इतनी विकृतियाँ कैसे निकलती हैं ?

उत्तर—बच्चा जब जन्म लेता है तब बिल्कुल साफ होता है। किन्तु जब वह घर के वातावरण में रहता है, गाली देना सीख जाता है, गुस्सा करना सीख जाता है। सब कुछ सीख जाता है। हमारा संसार परमाणुओं से आक्रान्त है। उस परमाणुमय संसार में रहने वाला आत्मा भी विशुद्ध कैसे रह पाता है ? मिश्रण से सारी अशुद्धि आती है। इसीलिए मंत्र-साधना द्वारा हम ऐसा कवच तैयार करते हैं कि बाहर का कोई प्रभाव ही न हो। आत्मा तब अपने शुद्ध रूप में अपने-आप रहेगी।

प्रश्न—आपने बताया कि नमस्कार महामंत्र की आराधना अनेक रूपों में की जाती है। जैसे—अर्हम्, ओम्, असिआउसा आदि। एक मंत्र-साधक को क्या इन सबमें एक ही शब्दावली का चयन करना चाहिए ? उसको किस विधि-विधान का पालन करना पड़ता है ?

उत्तर—महामंत्र की उपासना विभिन्न रूपों में की जाती है, किन्तु इनका चुनाव इस आधार पर किया जाता है कि मंत्रसाधक के सामने प्रश्न क्या है ? मंत्र साधना का उसका लक्ष्य क्या है ? उसे निश्चय करना पड़ेगा कि वह मन की किस शक्ति को जगाना चाहता है ? उसके आधार पर ही महामंत्र के विभिन्न रूपों का चुनाव होगा।

यदि कोई साधक तीन चैतन्यकेन्द्रों को जागृत करना चाहता है तो उसे महामंत्र के ‘ओम्’ रूप की साधना करनी होगी। वह चाहता है कि उसका दर्शनकेन्द्र, ज्ञानकेन्द्र और आनन्दकेन्द्र—तीनों केन्द्र जागृत हों तो उसे ‘ओम्’ का तीन रंगों के साथ उन केन्द्रों में ध्यान करना होगा— दर्शनकेन्द्र पर लाल, ज्ञानकेन्द्र पर श्वेत और आनन्दकेन्द्र पर पीला। तीनों केन्द्र सक्रिय हो जाएंगे।

कोई साधक केवल दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र को जागृत करना चाहता है तो उसे महामंत्र के ‘ह्रीं’ रूप की आराधना करनी होगी।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए उसके भिन्न-भिन्न रूपों की उपासना विहित है। हमें चुनाव करना होता है कि हम किस चैतन्यकेन्द्र को जागृत करना चाहते हैं और उसके द्वारा मन की किस प्रकार की शक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं। यह सारा किसी मार्ग-दर्शक से जाना जा सकता है।

दूसरा प्रश्न है विधि-विधान का। जो मंत्र की आराधना करना चाहें वे सबसे पहले किसी गुरु से मंत्र की दीक्षा लें। निश्चित दिशा की ओर मुंह कर निश्चित स्थान और निश्चित समय में आराधना करनी चाहिए। प्रतिदिन एक ही दिशा, एक ही स्थान और एक ही समय। जिस स्थान पर आराधना की जाती है वहां दूसरों का प्रवेश निषिद्ध होना चाहिए। आराधना के समय दूसरा कोई व्यक्ति वहां उपस्थित नहीं होना चाहिए। और भी अनेक विधि-विधान हैं। कुछ तो सभी मंत्रों के लिए सामान्य विधान हैं और कुछ विशेष मंत्रों के लिए विशेष विधान हैं।

सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति को, नींद खुलते ही, सात-आठ बार नमस्कार मंत्र का जाप करना चाहिए, फिर अपनी विशेष आराधना के समय विशेष प्रकार से जाप करना चाहिए।

यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। इसकी लंबी चर्चा अभी नहीं की जाएगी। संक्षिप्त चर्चा से साधक को दिशा निर्देश मिल जाएगा।

प्रश्न—नमस्कार महामंत्र की आराधना का लक्ष्य क्या होना चाहिए ?
आखिर हम इससे क्या पाना चाहते हैं ?

उत्तर—हमारा लक्ष्य होना चाहिए—मन की शक्तियों का विकास, आत्मा का जागरण, अपनी आत्मा में अर्हत् और सिद्धस्वरूप को प्रकट करना। धार्मिक व्यक्तियों का यही लक्ष्य होना चाहिए। अन्यान्य व्यक्ति दूसरे ऐहिक लाभ के लिए भी इस महामंत्र की आराधना करते हैं। यह व्यक्ति के आकर्षण और परिस्थिति पर निर्भर करता है।

हमारी प्रेक्षा-ध्यान पद्धति का मूल लक्ष्य है—आध्यात्मिक बीमारियों को समाप्त करना। तीन बीमारियां हैं—आवरण, विकार और अन्तराय। आवरण को दूर करने के लिए भी शक्ति चाहिए, विकार को मिटाने के लिए भी शक्ति चाहिए और अन्तराय से छुटकारा पाने के लिए भी शक्ति चाहिए। शक्ति के बिना कुछ भी नहीं होता। मंत्र की आराधना से शक्ति जागृत होती है। अन्तराय को बहुत क्षीण किया जा सकता है। अन्तराय कर्म को क्षीण

करना, आन्तरिक आत्मिक शक्तियों को जगाना ही हमारा लक्ष्य है।

प्रश्न—जिस प्रकार आपने रंगों की चर्चा की, उसी प्रकार संस्थानों की भी चर्चा हो तो मंत्र-जप में गति हो सकती है। मंत्रों की आकृतियों के बारे में कुछ स्पष्ट करें।

उत्तर—पुद्गल के चार गुण हैं—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श। उसी प्रकार उसका एक लक्षण है—संस्थान। आकार-रचना का भी बहुत बड़ा महत्त्व होता है। उसमें आकर्षण की क्षमता पैदा हो जाती है। इसी आधार पर मंत्रों का विकास हुआ। मंत्रों के संस्थान कहें या यंत्र—दोनों की एक ही बात है ! मंत्र और यंत्र—दोनों की विचित्र शक्तियाँ हैं। भयंकर पीलिया रोग जो दवाइयों से नहीं मिटता, वह 'यंत्र' से मिट जाता है। प्रश्न होता है कि यंत्र तो केवल रेखाओं के ढांचे मात्र हैं। उनसे क्या हो सकता है ? रेखाओं में इतनी बड़ी शक्ति कहां से आ जाती है ? आज यह प्रश्न अनुत्तरित नहीं रहा है। आज के वैज्ञानिकों ने जब पिरामिडों पर खोज की तो विचित्र तथ्य सामने आए। ऐसी बातें सामने आईं कि आप उनकी कल्पना तक नहीं कर सकते। आज पाश्चात्य देशों में इनका बहुत प्रचलन हो रहा है। दूध, दही, फल रखने के लिए पिरामिडों के आकार के बर्तन काम में लिये जाते हैं। अस्पतालों पिरामिडों के आकार में बनी हैं, जिनके परिणाम बहुत अच्छे आए हैं। मन की एकाग्रता की वृद्धि के लिए ये पिरामिड बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। पिरामिडों में रखा हुआ पानी औषधि के रूप में काम आ रहा है। उससे अनेक रोग मिटते हैं। सौर परिवार से जो विकिरण आते हैं उनको ग्रहण करने में ये पिरामिड उपयोगी हैं। इन पिरामिडों की व्याख्या ने यंत्रों की प्राचीन व्याख्या को पुनः उज्जीवित कर दिया। आकृतियों में कितनी शक्ति होती है—यह आज रहस्य नहीं रहा। हर पुद्गल पुद्गल का आकर्षण करता है। हर परमाणु परमाणु का आकर्षण करता है। अमुक रचना अमुक प्रकार के परमाणुओं को आकृष्ट करती है। सभी आकृतियाँ एक ही प्रकार के परमाणुओं का आकर्षण नहीं करतीं। विभिन्न प्रकार के आकार विभिन्न प्रकार के परमाणुओं को ग्रहण करते हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर यंत्रों के विभिन्न न्यासों का विकास प्रतीत होता है।

नमस्कार महामंत्र के साथ-साथ विभिन्न मंत्रों का विकास हुआ। वैसे ही

विभिन्न यंत्रों का भी विकास हुआ। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग ही इतना अधिक लंबा हो गया कि मैं इन यंत्रों के विषय में कुछ नहीं कह सका। नमस्कार महामंत्र की व्याख्या जिस प्रकार विभिन्न मंत्रों के साथ की जाती है, वैसे ही विभिन्न यंत्रों के साथ भी की जाती है। मैं इस विषय में और कभी प्रकाश डालूंगा।

प्रश्न—नमस्कार महामंत्र का ध्यान यदि ज्ञानकेन्द्र में श्वेत वर्ण के साथ किया जाए तो कैसी आकृति होगी ?

उत्तर—ज्ञानकेन्द्र में पुरुष की आकृति का ध्यान करना चाहिए। मस्तिष्क में स्फटिकमय, निर्मल और स्वच्छ पुरुषाकार की कल्पना की जाए। कल्पना इतनी प्रबल हो कि वह सफेद मूर्ति साक्षात् दीखने लगे। वर्ण के साथ उस पुरुषाकृति की कल्पना को पुष्ट करना चैतन्य जागरण की प्रक्रिया है। आंख से देखना एक बात है और कल्पना का चित्र बनाकर मानसिक आंख से देखना दूसरी बात है। कल्पना का चित्र बनाना, संकल्प को पुष्ट करना और यथार्थ तक ले जाना—इस सूत्र को हम याद रखें—कल्पना, संकल्प, और यथार्थ।

प्रश्न—क्या ध्यान और भक्ति में भेद है ?

उत्तर—ध्यान और भक्ति में भेद भी है और अभेद भी है। यदि भक्ति को केवल उपासना का रूप माना जाए, स्तुति करना, भजन करना, नाम जपना मात्र माना जाए तो वह ध्यान से सर्वथा भिन्न है। भक्ति को यदि आध्यात्मिक रूप में माना जाए तो वह ध्यान से अभिन्न है।

आचार्य शंकर ने ‘विवेक चूड़ामणि’ नामक ग्रन्थ में भक्ति की बहुत सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है—

‘स्वस्वरूपानुसन्धानं, भक्तिरित्यभिधीयते।’

—अपने स्वरूप का अनुसंधान करना भक्ति है। इस दृष्टि से भक्ति और ध्यान अभिन्न अंग बन जाते हैं।

प्रश्न—मन को अधिक समय तक संवेदनशील कैसे बनाया जा सकता है ?

उत्तर—जैसे कम समय तक उसे संवेदनशील बनाया जा सकता है वैसे ही उसे अधिक समय तक संवेदनशील बनाया जा सकता है। कम या अधिक समय की बात ‘आंच’ पर निर्भर करती है। चाहे कोई चावल

पकाए या सोने को पिघाले—दोनों में आंच आवश्यक होती है। केवल आंच की तीव्रता या मंदता, काल की ह्रस्वता या दीर्घता का अन्तर आता है। किसके लिए कितनी आंच चाहिए, यह जानना आवश्यक है।

प्रश्न—कायोत्सर्ग और ध्यान में क्या अन्तर है ? क्या कायोत्सर्ग ध्यान में परिवर्तित हो सकता है ?

उत्तर—कायोत्सर्ग ध्यान की पृष्ठभूमि है। बिना कायोत्सर्ग सधे, ध्यान सफल नहीं हो सकता। ध्यान के लिए कायोत्सर्ग अनिवार्य है। जब तक आसन स्थिर नहीं, वाणी का विसर्जन नहीं, मन का शिथिलीकरण नहीं, श्वास शांत नहीं, तब तक ध्यान की स्थिति नहीं बनती। कायोत्सर्ग ध्यान का पहला चरण है। उसे कायिक ध्यान भी कहा जाता है। जब कायिक ध्यान सध जाता है, वाचिक ध्यान (मौन) सध जाता है, तब मानसिक ध्यान अपने-आप सध जाता है।

प्रश्न—क्या सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) कायोत्सर्ग का ही एक अंग है ?

उत्तर—नहीं। सम्मोहन भिन्न वस्तु है और कायोत्सर्ग भिन्न वस्तु है। सम्मोहन चमत्कार है। उससे व्यक्ति को मूढ़ बनाया जा सकता है। मूलतः सम्मोहन करने वाले व्यक्ति की शक्तियां बहुत क्षीण हो जाती हैं। जिस व्यक्ति पर सम्मोहन का प्रयोग किया जाता है, उसकी शक्तियां बहुत क्षीण होती हैं। अन्ततः कुशती करनेवाले व्यक्ति की-सी स्थिति बन जाती है। मल्ल पहले बहुत बलवान् होते हैं, किन्तु पचास को पार कर जाने पर शक्तिहीन हो जाते हैं। सम्मोहन की भी यही स्थिति है। यह बहुत उपयोगी प्रक्रिया नहीं है।

परिशिष्ट

नमस्कार महामन्त्र के विभाग, पद, समस्याएं तथा अक्षर-प्रमाण

पद	अध्ययन	पद-क्रम	सम्पदाएं	अक्षर प्रमाण	गुरु	लघु
णमो अरहंताणं	१	१	१	७	०	७
णमो सिद्धाणं	१	२	२	५	१	४
णमो आयरियाणं	१	३	३	७	०	७
णमो उवज्झायाणं	१	४	४	७	१	६
णमो लोए सव्वसाहूणं	१	५	५	६	१	८
एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो		६	६	८	१	७
मंगलाणं च सव्वेसिं		७	७	८	२	६
पढमं हवइ मंगलं		८	८	८	१	७
		९	९	६	०	६
				६८	७	६१

नमस्कार मन्त्र के वर्ण और तत्त्व

वर्ण	तत्त्व	वर्ण	तत्त्व
णमो	आकाश	णमो	आकाश
अ	वायु	उ	पृथ्वी
र	अग्नि	व	जल
हं	आकाश	ज्झा	पृथ्वी-जल
ता	वायु	या	वायु
णं	आकाश	णं	आकाश
णमो	आकाश	णमो	आकाश
सि	जल	लो	पृथ्वी
द्धा	पृथ्वी-जल	ए	वायु
णं	आकाश	स	जल
णमो	आकाश	व्व	जल
आ	वायु	सा	जल
य	वायु	हू	आकाश
रि	आकाश	णं	आकाश
या	वायु		
णं	आकाश		

नमस्कार महामन्त्र : अभ्यास पद्धतियां

णमो अरहंताणं

ज्ञान-केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और श्वेत वर्ण ।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में श्वास द्वारा श्वेत वर्ण वाला^१ 'ण' लिखें और उसे साक्षात् देखने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'अ', 'र', 'हं', 'ता', 'ण',—एक-एक वर्ण को लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद-ध्यान। 'णमो अरहंताणं'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास द्वारा लिखे हुए इस पूरे पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो अरहंताणं'—इस सप्ताक्षरी मंत्र का अर्थ है—अर्हत् को नमस्कार। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति से सम्पन्न आत्मा का नाम 'अर्हत्' है। ज्ञानकेन्द्र में स्फटिक जैसी निर्मल और श्वेत पुरुषाकृति के रूप में अर्हत् का ध्यान करें। पहले उस आकृति की कल्पना करें, फिर उसके साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने अर्हत्स्वरूप का ध्यान। अपने शरीर के कण-कण में अर्हत् (स्फटिक जैसी निर्मल और श्वेत पुरुषाकृति) के साक्षात्कार का अभ्यास करें और अनन्त चतुष्टयी के विकास का अनुभव करें।

णमो सिद्धाणं

दर्शन केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और बाल-सूर्य जैसा अरुण वर्ण।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में श्वास द्वारा लाल वर्ण वाला 'ण' लिखें और उसे

१. अक्षर चमकते रंग वाले हों तथा वे कम से कम दो-तीन फुट तक हों। उनमें प्रकाश की किरणें फूट रही हों, वे ज्योतिर्मय हों। प्रत्येक अक्षर पर कम से कम एक मिनट तक ध्यान करें। तीन या छह मास में अक्षर का साक्षात्कार हो जाता है। किसी-किसी साधक को पहले भी हो जाता है।

१३६ : एसो पंच णमोक्कारो

साक्षात् देखने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'सि', 'द्धा', 'णं'—एक-एक वर्ण लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद-ध्यान। 'णमो सिद्धाणं'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास के द्वारा लिखे गए इस पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो सिद्धाणं'—इस पंचाक्षरी मंत्र का अर्थ है—सिद्ध को नमस्कार। सिद्ध आत्मा का ध्यान दर्शन-केन्द्र में बाल-सूर्य के रूप में करें; बाल-सूर्य के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

सिद्ध आत्मा का ध्यान शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा के रूप में करें। चन्द्रमा के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने सिद्धस्वरूप का ध्यान करें। शरीर के कण-कण में बाल-सूर्य जैसी प्रकाश-ज्योति का अनुभव करें फिर चन्द्रमा जैसी निर्मल ज्योति का अनुभव करें।

णमो आयरियाणं

विशुद्धि केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और दीपशिखा जैसा पीत वर्ण।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में श्वास द्वारा पीत वर्णमाला 'ण' लिखें और उसे साक्षात् देखने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'आ', 'य', 'रि', 'या', 'णं',—एक-एक वर्ण लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद-ध्यान। 'णमो आयरियाणं'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास द्वारा लिखे गए इस पूरे पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो आयरियाणं'—इस सप्ताक्षरी मंत्र का अर्थ है—

आचार्य को नमस्कार। आचार्य का ध्यान स्वयंप्रकाशी और दूसरों को प्रकाशित करनेवाली पीली दीपशिखा के रूप में करें, दीपशिखा के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने आचार्यस्वरूप का ध्यान करें। शरीर के कण-कण में स्वयं प्रकाशी और दूसरों को प्रकाशित करने वाली पीली दीपशिखा का अनुभव करें।

णमो उवज्झायाणं

आनन्द-केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और निरभ्र आकाश जैसा नील वर्ण।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में ध्यान द्वारा नील वर्ण वाला 'ण' लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'उ', 'व', 'ज्झा', 'या' 'णं'—एक-एक वर्ण लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद-ध्यान। 'णमो उवज्झायाणं'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास द्वारा लिखे गए इस पूरे पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो उवज्झायाणं'—इस सप्ताक्षरी मंत्र का अर्थ है—उपाध्याय को नमस्कार। उपाध्याय का ध्यान नीले आकाश के रूप में करें। नीले आकाश के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने उपाध्यायस्वरूप का ध्यान करें। शरीर के कण-कण में नीले आकाश (महाशून्य) का अनुभव करें।

णमो लोए सव्वसाहूणं

शक्ति-केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और कस्तूरी जैसा श्याम वर्ण।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में श्वास द्वारा श्याम वर्णवाला 'ण' लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'लो', 'ए', 'स' 'व्व' 'सा' 'हू', 'णं'—एक-एक वर्ण लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद-ध्यान। 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास द्वारा लिखे गये इस पूरे पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—इस नवाक्षरी मंत्र का अर्थ है—लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार। साधु का ध्यान श्याम-बिंदु के रूप में करें।

श्यामबिंदु के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने साधु स्वरूप का ध्यान करें। शरीर के कण-कण में श्यामबिंदु का अनुभव करें।

दूसरा प्रकार

मुनि का ध्यान शक्ति केन्द्र के स्थान पर 'पादपीठ' पर भी किया जाता है। शेष सब पूर्ववत्।

प्रयोजन

१. णमो अरहंताणं—आवरण-मूर्च्छा और अन्तराय को क्षीण-उपशांत करने के लिए।
२. णमो सिद्धाणं—शाश्वत आनन्द की अनुभूति के लिए।
३. णमो आयरियाणं—बौद्धिक चेतना की सक्रियता के लिए।
४. णमो उवज्झायाणं—मानसिक शांति और समस्या समाधान के लिए।
५. णमो लोए सव्वसाहूणं—कामवासना को क्षीण-उपशांत करने के लिए।

नव-पद-ध्यान

१. अष्ट दल कमल। कर्णिका में 'णमो अरहंताणं'। शेष चार दिशाओं की चार पंखुड़ियों में चार पद (णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं) स्थापित करें। चार विदिशाओं की पंखुड़ियों पर चार पत (एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावनप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं) स्थापित करें।

अथवा विदिशा वाली पंखुड़ियों में—णमो दंसणस्स, णमो णाणस्स, णमो चरित्तस्स, णमो तवस्स—इन चार पदों को स्थापित करें।

'ऊँ' के बिना नौ पदों का स्मरण करना चाहिए।

अथवा

चार दल वाले कमल के बीच 'णमो अरहंताणं' तथा चार दलों में शेष चार पदों का स्मरण करना चाहिए। इसे 'अपराजित मंत्र' कहा जाता है।

फल—पाप का क्षय।

- | | |
|----------------------|--------------------------------|
| २.० णसो अरहंताणं | ज्ञानकेन्द्र में |
| ० णमो सिद्धाणं | ललाट में |
| ० णमो आयरियाणं | दाएं कान में |
| ० णमो उवज्झायाणं | ग्रीवा और सिर के सन्धि भाग में |
| ० णमो लोए सव्वसाहूणं | बाएं कान के पीछे। |

एसो पंच णमोक्कारो
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवइ मंगलं ।



दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर चारों
पद चारों विदिशाओं में ।

इसका पदमावर्त जाप अर्थात् पद्य के आवर्तन की तरह जाप करें ।
फल—कर्मक्षय, मन-स्थैर्य ।

३. वीतराग पुरुष की पुरुषाकृति पर नौ पदों का ध्यान—

- | | |
|----------------------------|--------------------|
| १. बायें पैर के अंगूठे पर | णमो अरहंताणं |
| २. दायें पैर के अंगूठे पर | णमो सिद्धाणं |
| ३. बायें घुटने पर | णमो आयरियाण |
| ४. दायें घुटने पर | णमो उवज्झायाणं |
| ५. बायें हाथ पर | णमो लोए सव्वसाहूणं |
| ६. दायें हाथ पर | एसो पंच णमोक्कारो |
| ७. बायें कंधे पर | सव्व पावप्पणासणो |
| ८. दायें कंधे पर | मंगलाणं च सव्वेसिं |
| ९. शिखा पर | पढमं हवइ मंगलं |
| १०. ललाट पर | णमो अरहंताणं |
| ११. कण्ठ पर | णमो सिद्धाणं |
| १२. वक्षस्थल पर | णमो आयरियाणं |
| १३. नाभि पर | णमो उवज्झायाणं |
| १४. अंजलि में | णमो लोए सव्वसाहूणं |
| १५. बायें पैर के अंगूठे पर | एसो पंच णमोक्कारो |
| १६. दायें पैर के अंगूठे पर | सव्व पावप्पणासणो |
| १७. बायें घुटने पर | मंगलाणं च सव्वेसिं |
| १८. दायें घुटने पर | पढमं हवइ मंगलं |
| १९. बायें हाथ पर | णमो अरहंताणं |
| २०. दायें हाथ पर | णमो सिद्धाणं |
| २१. बायें कंधे पर | णमो आयरियाणं |
| २२. दायें कंधे पर | णमो उवज्झायाणं |
| २३. शिखा पर | णमो लोए सव्वसाहूणं |

२४. ललाट पर	एसो पंच णमोक्कारो
२५. कण्ठ पर	सव्व पावप्पणासणो
२६ वक्षस्थल पर	मंगलाणं च सव्वेसिं
२७. नाभि पर	पढमं हवइ मंगलं

४. अष्टदल वाले कमल की कल्पना कर कर्णिका में प्रथम पद (णमो अरहंताणं) तथा शेष आठ पद यथास्थान रखकर नवकार मंत्र का जाप करना चाहिए।

पुरुषाकार की कल्पना कर बायें पैर के अंगूठे पर एक कमल की कल्पना करनी चाहिए जिसमें नौ पद यथास्थान उल्लिखित हों।

दूसरा कमल दायें पैर के अंगूठे पर स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार हृदय तक १२ स्थान होते हैं, बारह कमलों की स्थापना होती है। नौ बार जाप करने से $६ \times १२ = १०८$ नवकार मंत्र की एक माला सम्पन्न होगी।

५. दो कान, दो आंखें, नाक के दो छिद्र और एक मुंह—इन सात छिद्रों को सात अंगुलियों से ढंककर 'णमो अरहंताणं' का जाप करें।

इससे दिव्यनाद, दिव्य घण्टारव, दिव्य संगीत, दिव्यरूप, दिव्य गंध, दिव्य रस का अनुभव होता है।

६. पांच पदों को पांच इन्द्रियों से युक्त करना—

१. णमो अरहंताणं कानों से अर्हत् की ध्वनि को सुनने का अभ्यास। दिव्य श्रवण की शक्ति का विकास।
२. णमो सिद्धाणं सिद्ध आत्म-सौन्दर्य से परिपूर्ण है। उन्हें आंखों का विष बनाएं। दर्शन-शक्ति का विकास।
३. णमो आयरियाणं आचार्य के पंचाचार से पवित्र देह से सुगंध फैलती है। नाक का विषय बनाएं, दिव्य-सुरभि का विकास।
४. णमो उवज्झायाणं स्वाध्याय का रस अमृत है। उपाध्याय इसके प्रतीक हैं। स्वादेन्द्रिय का विषय बनाएं।

५. णमो लोए सव्वसाहूणं स्पर्श का प्रतीक। भाव-स्पर्श का अनुभव करने से द्रव्य-स्पर्श की लालसा टूट जाती है।

७. शरीर में मुख्य स्थान है—हृदय। इससे चौदर रज्जु वाले लोक से संबंध स्थापित किया जा सकता है। हृदय-कमल आठ पंखुड़ियों वाला है, वे पंखुड़ियां औंधी हैं। इसीलिए बुद्धि की गति नीचे की ओर है। नवकार मंत्र के पदों को हृदय-कमल पर स्थापित कर, जाप करने से वे ऊर्ध्वमुखी हो जाती हैं।

० जाप में रंग का भी महत्त्व होता है। श्वेत रंग आत्मा को उज्वल बनाता है, मोक्ष-पद को प्राप्त कराता है।

८. पहला पद— समवसरण में सर्वज्ञ की वाणी।

दूसरा पद सिद्धशिला के आनन्दमय एकान्त में।

तीसरा पद पंचाचार की सुगन्ध से सुरभित नन्दन वन में।

चौथा पद ब्रह्माण्ड के विज्ञान के सूक्ष्म सिद्धान्तों के समुद्र में।

पांचवां पद पांच महाव्रतों के आन्तरिक सामर्थ्य के महामेरु पर।

९. अक्षरमय ध्यान

पद	अक्षर संख्या	वर्ण
णमो अरहंताणं	७	श्वेत
णमो सिद्धाणं	५	रक्त
णमो आयरियाणं	७	पीत
णमो उवज्जायाणं	७	नील
णमो लोए सव्वसाहूणं	६	श्याम
एसो पंच णमोक्कारो	८	श्वेत
सव्व पावप्पणासणो	८	श्वेत
मंगलाणं च सव्वेसिं	८	श्वेत
पढमं हवइ मंगलं	६	श्वेत

(श्वेत गाय के दूध जैसा।

रक्त प्रवाल जैसा

पीत स्वर्ण जैसा

नील प्रियंगु जैसा ।
श्याम अञ्जन जैसा ।)

वर्ण-युक्त अक्षर का चिन्तन करें। वह कम से कम दो-तीन फुट बड़ा हो। मन को स्थिर करें। मन की आंख से देखें। मन शांत और स्वस्थ होगा तो अक्षर की आकृति स्पष्ट दिखने लगेगी; अन्यथा अक्षर का रंग और आकृति बदल जाएगी।

प्रत्येक अक्षर पर २०-३० सेकण्ड, फिर बढ़ाते जाएं।

एक के बाद दूसरे अक्षर को स्मृति-पटल पर लाने की कुशलता प्राप्त करें। यह निरन्तर अभ्यास से सध सकेगी।

- निरन्तर अभ्यास करने से प्रत्येक अक्षर की सुन्दर आकृति प्रत्यक्ष होने लगेगी। मन वहां स्थिर होगा। फिर धीरे-धीरे अक्षर में से किरणें फूटने लगेगी और सारे अक्षर ज्योतिर्मय बन जाएंगे।

प्रयुक्त विधि

- रात्रि का चौथा प्रहर। साधक पर्वत के शिखर पर स्थित है। अनन्त नीला आकाश। श्वेत वर्ण वाला 'ण' उभर रहा है। बहुत लम्बा-चौड़ा। फिर क्रमशः—'मो अ र हं ता ण'—अक्षर श्वेत वर्ण में इसी प्रमाण में एक-एक कर उभर रहे हैं।
- अरुणोदय हो गया है। बाल-सूर्य के वर्ण वाले पांचों अक्षर—'णमो सिद्धाणं'—उभर रहे हैं।
- सूर्योदय हो चुका है। सूर्य आकाश के मध्य में स्थित है। मध्याह्न की वेला है। पीत वर्ण में 'ण मो आ य रि या णं'—ये सात अक्षर उभर रहे हैं। प्रत्येक का प्रत्यक्षीकरण।
- सायंकाल का समय आ गया है। अंधकार प्रसृत हो रहा है। नील वर्ण में 'ण मो उ व ज्ञा या णं'—का चिन्तन किया जाए।
- रात्रि बीत रही है। मध्यरात्रि का समय। श्याम वर्ण में—'ण मो लो ए स व्य सा हू णं' का चिन्तन किया जाए।

समय

इसमें एक आवृत्ति में ३५-४० मिनट। तत्पश्चात्—‘एसो पंच……मंगलं—इन तैंतीस अक्षरों का ध्यान श्वेत वर्ण में करना चाहिए। इस ध्यान में भी ३५-४० मिनट लगेंगे। इस प्रकार एक बार नमस्कार महामंत्र के ध्यान में ७०-८० मिनट लगेंगे।

१०. अष्टदल वाले कमल की हृदय में कल्पना करें।

प्रथम पद ‘णमो अरहंताणं’ को कर्णिका में स्थापित करें।। तत्पश्चात् चार पदों को चार दिशावर्ती-दलों पर स्थापित करें तथा ‘एसो पंच……’—इन चार पदों को चार विदिशाओं वाले दलों पर स्थापित करें।

११. हाथ से माला फेरना ।

दायें हाथ से नन्द्यावर्त की पद्धति से १२ बार,
बायें हाथ से शंखावर्त की पद्धति से ६ बार,
कुल $१२ \times ६ = १०८$ बार ।

बायें हाथ—शंखावर्त

७	८	९	१०
६	१	२	११
५	४	३	१२

तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठ

दायें हाथ—नन्द्यावर्त

३	४	५	१२
२	७	६	११
१	८	९	१०

कानिष्ठा, अनामिका, मध्यमा, तर्जनी

रक्षा कवच

दूसरे के शरीर में अपने शरीर को स्थापित करना—वहां स्थापित अपने मस्तक, मुख, कंठ, हृदय और चरण-स्थानों में क्रमशः अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि पदों का न्यास करना । इससे रक्षा होती है ।

- हृदय में चार दल वाले कमल की कल्पना करें। क्रमशः 'णमो सिद्धाणं'—ऐसे पांच वर्णवाले मन्त्र का ध्यान करें।
फल—कर्म-क्षय ।

● ॐ नमः सिद्धं

ॐ—भ्रू युग्म पर
न—नासाग्र पर
मः—ओष्ठ युगल पर
सि—कर्णपाली पर
द्धं—ग्रीवा पर

● अङ्गायास

ॐ णमो अरहंताणं—शिरोरक्षा ।
ॐ णमो सिद्धाणं—मुखरक्षा ।
ॐ णमो आयरियाणं—दक्षिण-हस्त रक्षा ।
ॐ णमो उवज्झायाणं—वाम-हस्त रक्षा ।
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं—कवच ।

ॐ णमो अरहंताणं (ध्यान-प्रक्रिया)

मुख में चन्द्र-मण्डल के आकार वाले अष्टदल कमल की कल्पना करें ।
प्रत्येक दल पर एक-एक अक्षर का न्यास करें—

ॐ ण मो अ र हं ता णं ।

‘स्वर्णगौरीं स्वरोद्भूतां, केशरालीं ततः स्मरेत् ।
कर्णिकां च सुधावीजं, व्रजन्तु भुवि भूषितम् ।।’

दाह-शांति

ॐ नमो ॐ अर्हं असि आ उ सा ‘नमो अरहंताणं नमः’—हृदय-कमल में १०८ बार जपने से उपवास का फल । इस मंत्र से पानी को मंत्रित कर अग्नि या दावानल के आगे उस पानी की रेखा खींचने से दाह-शांति ।

रक्षा-मंत्र

ॐ णमो अरहंताणं—नाभि ।
ॐ णमो सिद्धाणं—हृदय ।

ॐ णमा आयारयाण—कण्ठ ।

ॐ णमो उवज्झायाणं—मुख

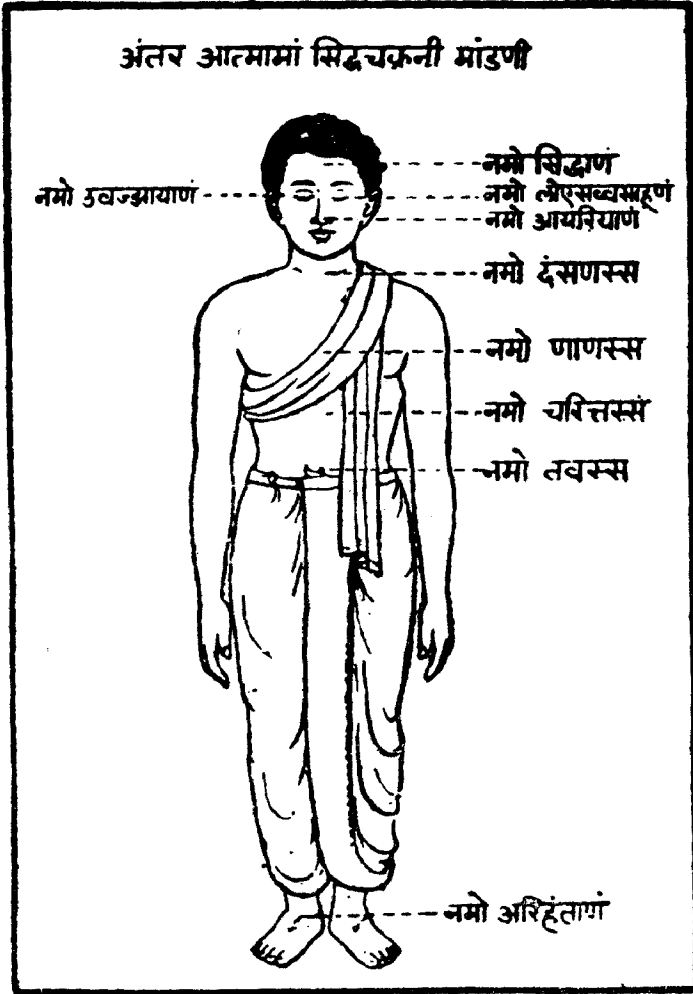
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं—मस्तक

सर्वांगेषु मां रक्ष-रक्ष हिलि-हिलि मातंगिनी स्वाहा ।

- जो साधक दूरश्रवण आदि लब्धियों को प्राप्त करना चाहता है, वह सप्ताक्षरी मंत्र 'णमो अरहंताणं' को सात मुख छिद्रों में स्थापित करे—
- दो कान—ण मो
- नथुने—अ र
- दो आंखें—हं ता
- एक मुख—णं ।

इस मंत्र-जाप से चक्षु आदि की सीमा से बाहर वाले रूप भी प्रत्यक्ष होते हैं ।

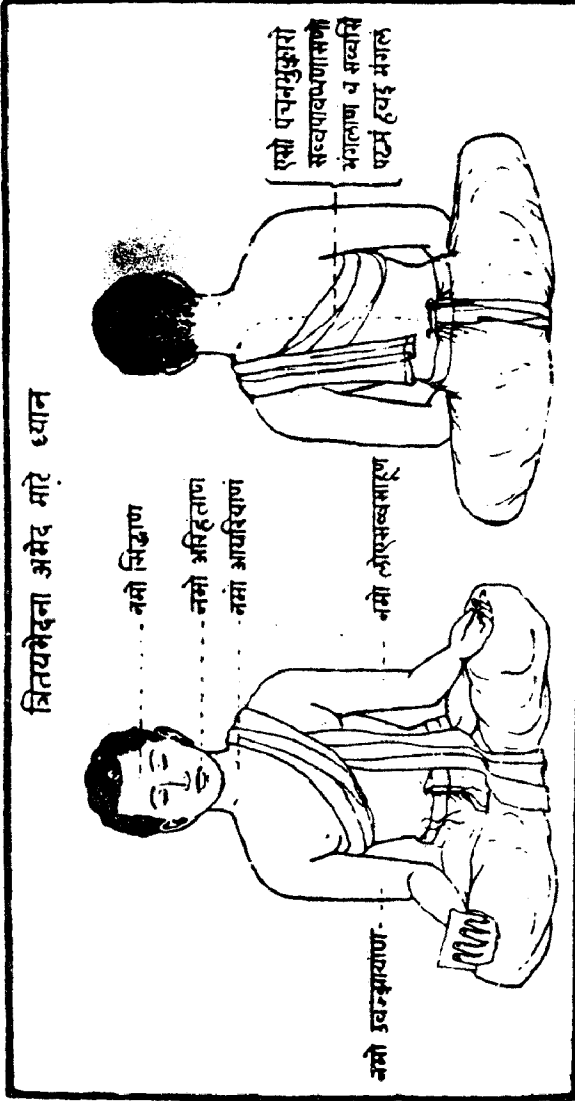
शरीर-केन्द्र और नमस्कार महामंत्र : १



- | | |
|---------------------------------|--------------------------|
| १. णमो अरहंताणं—दोनों चरण | ६. णमो दंसणस्स—कंठ |
| २. णमो सिद्धाणं—कपाल | ७. णमो णाणस्स—हृदय-कमल |
| ३. णमो आयरियाणं—नासिका | ८. णमो चरित्तस्स—उदर-कमल |
| ४. णमो उवज्जायाणं—दायीं आंख | ९. णमो तवस्स—नाभि-कमल |
| ५. णमो लोए सव्वसाहूणं—बायीं आंख | |

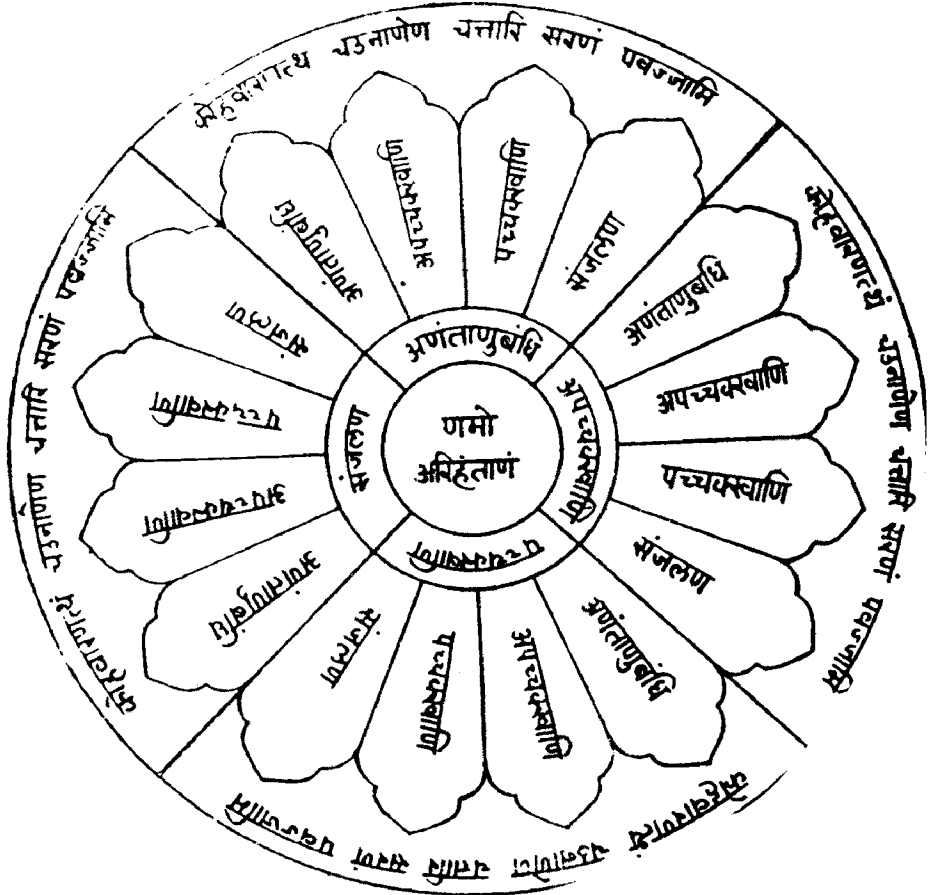
(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रन्थ से साभार)

शरीर केन्द्र और नमस्कार महामंत्र : २



- | | |
|----------------------|---------------------------------|
| १. णमो अरहंताणं—मुख | ४. नमो उवज्झायाणं—दायां हाथ |
| २. णमो सिद्धाणं—कपाल | ५. णमो लोए सव्वसाहूणं—बायां हाथ |
| ३. णमो आयरियाणं—कंठ | ६. एसो पंच णमोक्कारो—पीठ |
- (पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रंथ से साभार)

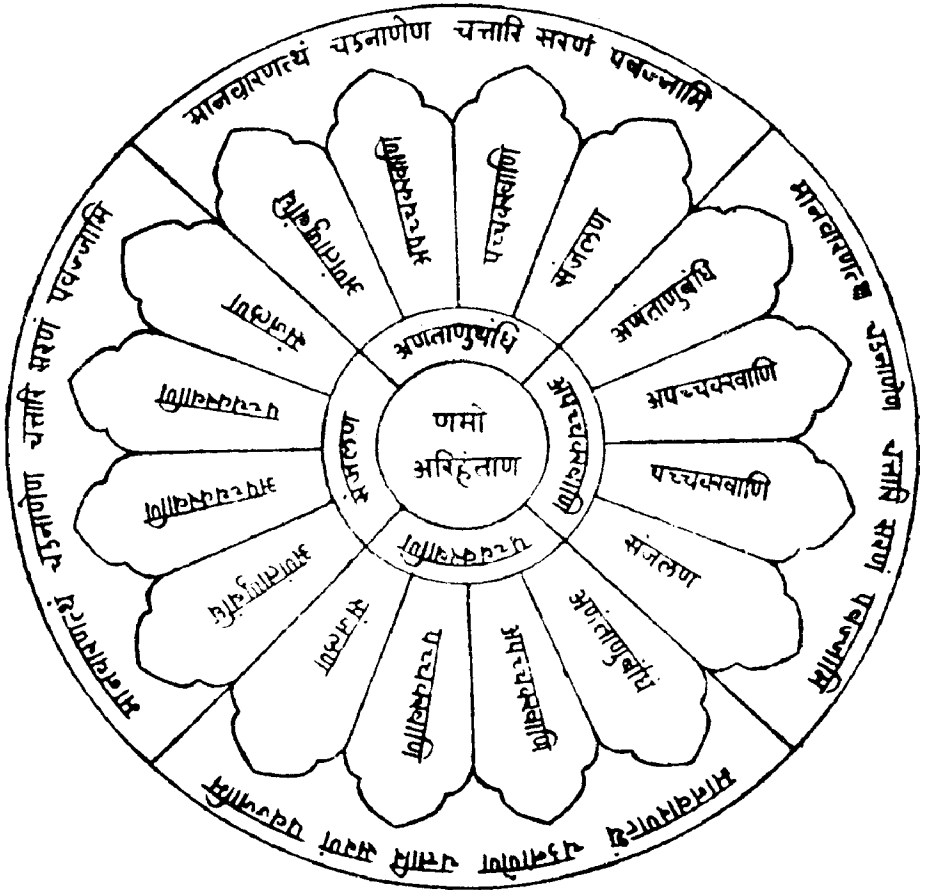
क्रोध-विजय
 नाभिकमले क्रोधनिवारणार्थं चतुर्ज्ञानेन
 चतुःशरणपूर्वकं परमपदध्यानम् ।



(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रंथ से साभार)

मान-विजय

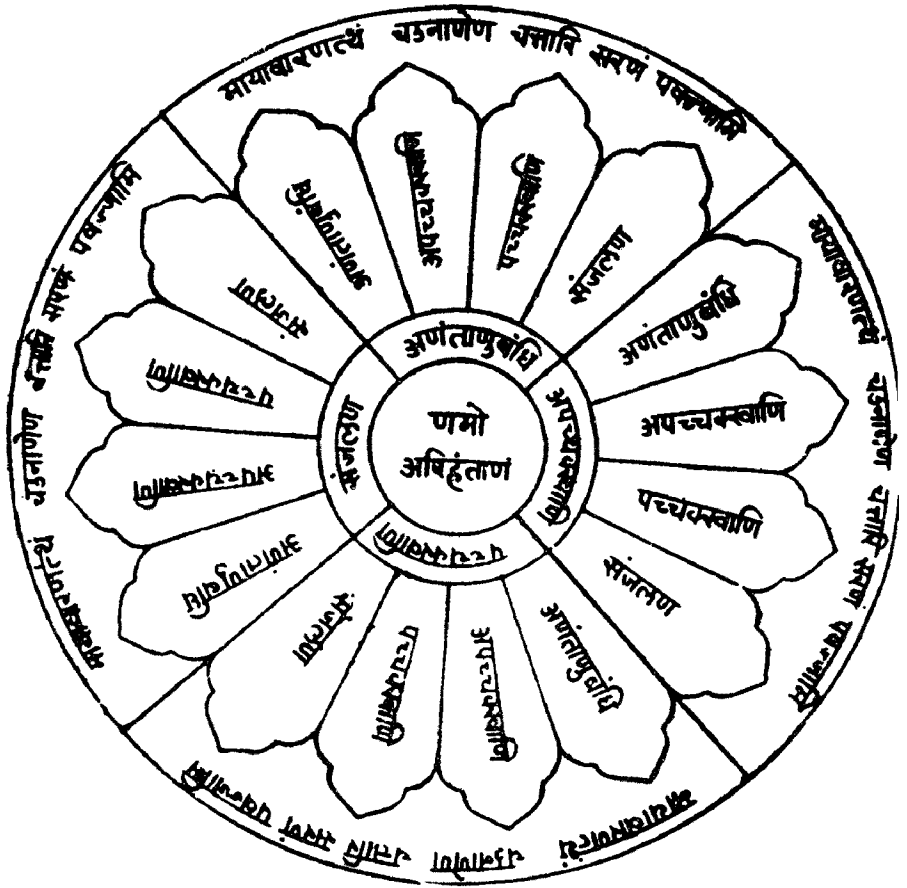
हृदयकमले माननिवारणार्थं चतुर्जानिन
चतुःशरणपूर्वकं परमपदध्यानम् ।



(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रन्थ से साभार)

माया-विजय

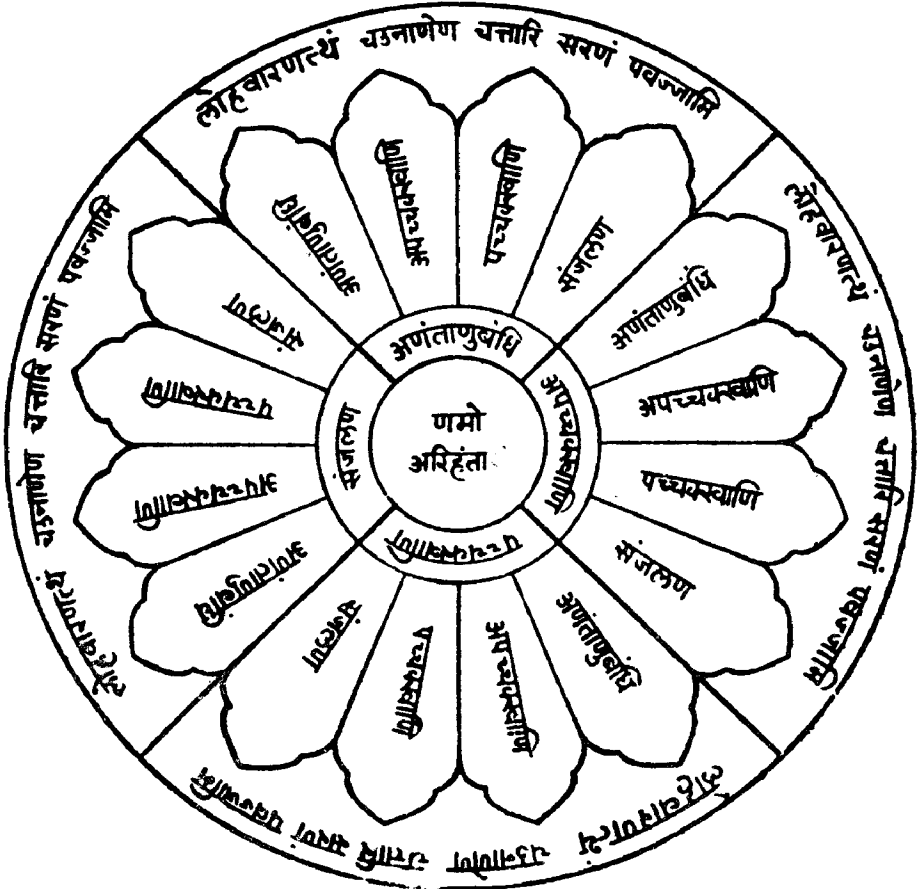
कण्ठकमले मायानिवारणार्थं चतुर्ज्ञानिन
चतुःशरणपूर्वकं परमपदध्यानम् ।



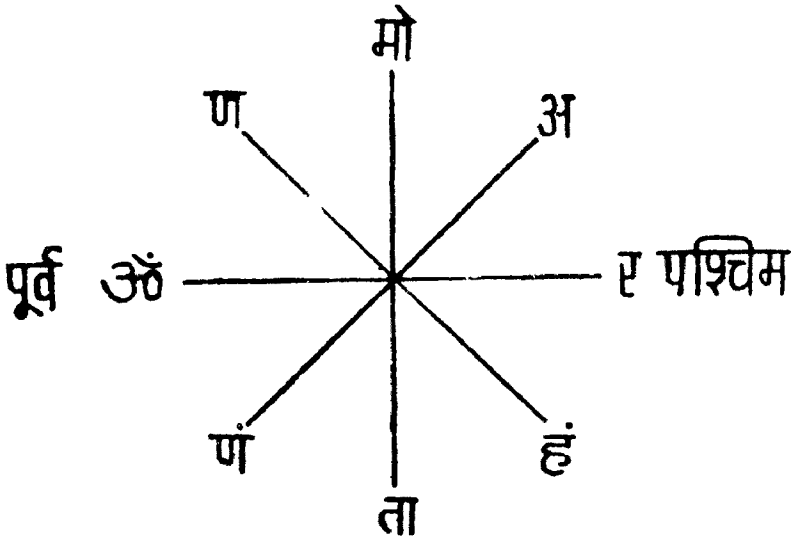
(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रन्थ से साभार)

लोभ-विजय

तालुकमले लोभनिवारणार्थं चतुर्ज्ञानिन
चतुःशरणपूर्वकं परमपदध्यानम् ।



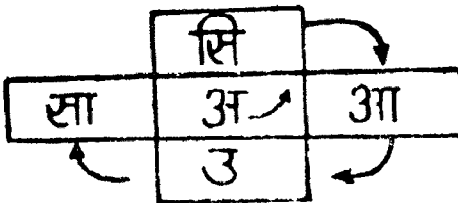
(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रन्थ से साभार)



असिआउसा-गर्भित-मंत्र

१. अ—नाभि
सि—मस्तक
आ—कण्ठ
उ—हृदय
सा—मुख

दल वाले हृदय-कमल में ज्योतिर्मय 'अ सि आ उ सा' का प्रदक्षिणा में ध्यान करना ।



(पांच अक्षरों के जाप से—मुक्ति)

अ—वन्दीमोक्ष, सि—शान्तिकर्म, आ—जनवशीकरण, उ—कर्ममोक्ष,
सा—तान्त्रिक षट् कर्म में सिद्धि ।

२. ॐ असिआउसा नमः ।

३. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं असिआउसा नमः ।

४. ॐ हों ह्रीं हँ : असिआउसा नमः

५. ॐ अर्हं अ शि अ उ सा नमः ।

(एक लाख जप)

६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ अ सि आ उ सा नमः । [यह त्रिभुवनस्वामिनी विद्या है । एक लाख जप । सर्वसिद्धि ।]

७. ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा क्लीं नमः ।

[विषनाशक]

८. ॐ हं ॐ ह्रीं अर्हं ऐं श्रीं अ सि आ उ सा नमः ।

(वाद विजय)

९. शरीर-रक्षण के लिए—‘अ’ मस्तक में, ‘सि’—मुख में, ‘आ’—कंठ में, ‘उ’—हृदय में, ‘सा’—चरण में स्थापित करें ।

अर्हं का ध्यान

१. अर्हं अरहंत की साक्षात् सर्ववर्णमयी मूर्ति है । इस अर्हं का सम्पूर्ण मेरुदण्ड (मेरुदण्डगत सुषुम्ना) में ध्यान करनेवाले आचार्य समस्त श्रुतार्थ के प्रवक्ता होते हैं ।

२. नाभिगत सुवर्णकमल के मध्य में ‘अर्हं’ की कल्पना करें । फिर वह ‘अर्हं आकाश में सभी दिशाओं में संचरण कर रहा है, ऐसा चिन्तन करें ।

जिसका मन इस ध्यान में लीन हो जाता है वह साधक स्वप्न में भी अर्हं के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता ।

ॐ पांच (अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु,) पदों से निष्पन्न है । संस्कृत के सोलह अक्षर—‘अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो नमः’ से निष्पन्न है । इनको सोलह पंखुडियों वाले हृत्कमल में स्थापित करें । बीच की कर्णिका में ‘सिद्ध’ की स्थापना करें ।

निष्पत्ति—१. दो सौ बार ध्यान करने से एक उपवास का फल ।

२. ‘अरहंतसिद्ध’—इन छह अक्षरों का तीन सौ बार जाप करने से एक उपवास का फल ।

३. ‘अरहंत’—चार सौ बार जाप करने से एक उपवास का फल ।

४. [अर्हं (ऽर्हं) का अवग्रह ‘अ’ रूप] ‘अ’ कुण्डलिनी स्वरूप है ।

नाभिकमल में ‘अ’ का पांच सौ बार ध्यान करने से एक उपवास का फल ।

ध्यान-विघ्न के रक्षण

- अष्ट दल कमल की मध्य कर्णिका में सूर्य के तेजस्वरूप को स्थापित करें।
- 'ॐ नमो अरहंताणं'—इस मन्त्र को पूर्व आदि चारों दिशाओं तथा विदिशाओं में आठों दलों पर स्थापित करें। इसका प्रत्येक दिशा-विदिशा में एक-एक दिन में ग्यारह सौ बार जाप करें।
- ध्यान में आने वाले सारे विघ्न शान्त होंगे।
नोट—इहलौकिक सिद्धि के लिए इस मन्त्र का ॐ पूर्वक ध्यान।
आध्यात्मिक सिद्धि के लिए 'ॐ' के बिना ध्यान।

□□

आचार्य महाप्रज्ञ की प्रमुख कृतियां

- मन के जीते जीत
- आभा मण्डल
- किसने कहा मन चंचल है
- जैन योग
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- एकला चलो रे
- मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि
- अपने घर में
- एसो पंच णमोक्कारो
- मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता
- समस्या को देखना सीखें
- नया मानव : नया विश्व
- भिक्षु विचार दर्शन
- अहंम्
- मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति
- समय के हस्ताक्षर
- आमंत्रण आरोग्य को
- महावीर की साधना का रहस्य
- घट-घट दीप जले
- अहिंसा तत्व दर्शन
- अहिंसा और शान्ति
- कर्मवाद
- संभव है समाधान
- मनन और मूल्यांकन
- जैन दर्शन और अनेकान्त
- शक्ति की साधना
- धर्म के सूत्र
- जैन दर्शन : मनन और मीमांसा

आदि-आदि

एसो पंच णमोक्कारो

आचार्य महाप्रज्ञ